भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव वर्ष पर

वर्धमान रूपायन

(तीन नाट्य-रूपक)

कुन्था जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-३९२
सम्पादक एवं नियोजक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
जगदीश

Lokodaya Series : Title No 392
VARDHAMAAN ROOPAAYAN
(*Plays*)
KUNTHA JAIN
First Edition : *1975*
Price : Rs. 10.00

©
BHARATIYA JNANPITH
B/45-47 Connaught Place
NEW DELHI-110001

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/४५-४७ कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१
प्रथम संस्करण : १९७५
मूल्य : १०.०० रुपये

परिच्छद पर चित्र का परिचय

जन्म-मंगल के समय इन्द्र-इन्द्राणी तीर्थंकर की जननी की सेवा में।
[महापुराण की सचित्र प्रति से, १५वीं शती]

सेवा में जननी की नियुक्त देवी अप्सराएँ
मुग्ध मन कलाचतुर पूछती प्रहेलिकाएँ
(पृष्ठ २४ पर की पूरक पंक्ति)

मुद्रक
मॉडर्न प्रिण्टर्स,
दिल्ली-११००३२

फूल-सी पली जहाँ
ज्ञानामृत सिंची
उसी वट-छाँह में
अर्पित यह अञ्जुरी !

इन नाटकों को संकलन में सम्मिलित करने के
लिए प्रकाशक अथवा लेखिका से अनुमति
प्राप्त करना आवश्यक है। मंच प्रस्तुति
के लिए प्रोत्साहन और परामर्श
लेखिका से प्राप्त करें ।

प्रस्तुति की सूचना अवश्य दें।

अपनी बात

भगवान महावीर का २५००वाँ निर्वाण पर्व, आध्यात्मिक समृद्धि और वीतराग आनन्द का उमड़ता झरना बनकर जीवन को प्रक्षालित करेगा और 'डूब कर तिरने' की अनुभूति का आभास-रस देगा, इसकी प्रतीति 'दिव्यध्वनि-छन्द', 'वीतराग' और 'मानस्तम्भ' की रचना-अवधि में हुई। संसार की विविध व्यस्तताओं और समसामयिक दबावों से घिरे व्यक्ति के लिए कितना महत् सान्त्वना-दायक वरदान !

भगवान के जीवन और उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि से उत्पन्न जीवन-दर्शन के विशेष अध्ययन की प्रेरणा मन में स्वतः स्फूर्त हुई।। मूल में अन्य कारण भी अवश्य रहे—जैन-कुल में उत्पन्न होने की सहज संस्कारगत श्रद्धा, परम्परागत अध्ययन के आधार पर इस श्रद्धा की परिपुष्टि और परिपुष्ट श्रद्धा के सम्प्रेषण की आंतरिक अनिवार्यता। शिक्षा-दीक्षा और परिवेश की आधुनिकता ने जीवन-दर्शन को नये आयाम दिये हैं। आधुनिक दृष्टि का आग्रह होता है कि भावना के उच्छ्वास को संयमित करके उसे उस तर्क का आधार दिया जाये जो आधुनिक जीवन की विषमताओं और निरीहताओं के बीच किसी स्थायी अवलम्ब का अन्वेषी है। महावीर के युग ने, इतिहास ने और उनके तत्त्व-चिन्तन ने समसामयिक समस्याओं के मूल को समझने की भूमिका दी और समाधान के संकेत भी दिये। इस सारी अनुभूति को, इस अनुभूति के आह्लाद को, किस प्रकार सम्प्रेषित किया जाय, यह प्रश्न मन में उमड़-घुमड़ रहा था। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा मंच प्रस्तुतीकरण और नृत्य-काव्य-रूपक द्वारा रोचक संप्रेषण की सम्भावनाएँ चित्त में उपज रही थीं, किन्तु इन माध्यमों को अपनाना और इनके लिए लिखना कितना कठिन है, यह मैं अनुभव से जानती रही हूँ।

हुआ यह कि अनुरोध और आग्रह आये कि इन विधाओं में मैं भगवान महावीर पर रचनाएँ दूँ। मुझे सारे संभ्रम दूर करने पड़े। स्वयं को इस दृष्टि से अनुशासित करने की आवश्यकता अनुभव हुई कि भगवान महावीर के प्रति संस्कारी श्रद्धा और विनय-भावना, उन दर्शकों और पाठकों के लिए भारी न पड़े जो महावीर की मानवीय शक्ति के चरम विकास और उनके उपदेश-दर्शन को रुचिकर कलात्मक माध्यम से ग्रहण करना चाहते हैं, और जिनकी माँग यह भी है कि श्रद्धा-भक्ति से निर्मित, शाश्वत बोध पर आधारित वे अतिशयोक्तियाँ एवं चमत्कारी घटनाएँ जो तीर्थंकरत्व-पद से विभूषित व्यक्तियों के जीवन से जुड़ी हैं, उनका

निर्देशन इस प्रकार हो कि वे समकालीन बोध के प्रकाश में 'सम्भव' की परिधि में स्थान पा सकें। सचेतन स्तर पर यह सब निबाह कर लिखना, कल्पना की उड़ान और भावना के सरल प्रवाह को बाँधना है। इसलिए ये रचनाएँ अपनी खूबी और खामियों सहित, यदि पठनीय और मंचीय दृष्टि से सफल हुईं तो समझूँगी कि भगवान के चरणों में प्रेषित श्रद्धांजलि स्वीकृत हुई।

रेडियो-नाटक लिखने का स्नेह-भरा अनुरोध स्वर्गीया बहिन रजनी पनिकर ने किया था। वे अकस्मात् हमारे बीच से चली गयीं। इस मार्मिक आघात को झेलने में 'मानस्तम्भ' की रचना ने हार्दिक शान्ति और सान्त्वना प्रदान की।

एक स्निग्ध-ज्योति जो मानस और हृदय को सदा प्रफुल्ल आलोक से भरती रही है, वह है मेरे अपने पिताजी स्वर्गीय पण्डित फतहचन्दजी की, जिन्हें साहित्य के काव्य-रूप से अत्यधिक प्रेम था, जो धर्म-दर्शन के गूढ़ तत्त्वों के तल-स्पर्शी ज्ञाता थे और, सबसे बड़ी बात यह कि, वह तार्किक और बुद्धिवादी पक्ष को कथा की रोचक शैली से जोड़कर सरल हृदय को श्रद्धावनत बनाने की अद्भुत क्षमता रखते थे। उन्होंने अपनी युवावस्था में अँगरेज़ों के शासन-काल में शिमले के मॉल रोड पर स्थित थियेटर में शौक़िया तौर पर पहली बार न्यामत सिंह रचित हिन्दी नाटक मैना सुन्दरी और तिलकसुन्दरी, सन् १९२७-२८ में प्रस्तुत किये थे और नारी पात्रों के सम्बन्ध में उस समय की परम्परा के अनुसार स्वयं नायिकाओं की भूमिका में आये थे। उनके साथ-ही-साथ अपनी माँ का सौम्य सुन्दर चेहरा आँखों में उतर आता है, जो आज भी गद्‌गद् कण्ठ और भाव-विह्वल मुद्रा से भगवान के दर्शन, स्तुति और पूजा-पाठ में अपने व्यक्तित्व को समोये रखती हैं और गृहस्थी के कामों से भी पूरी तरह जुड़ी हुई हैं।

सच पूछें तो प्राण-प्रिय आदरणीया बहिन रमाजी तो मेरे अपने व्यक्तित्व में इस तरह समायी रही हैं कि अपने को उनसे पृथक् पाकर मैं आज एकदम खण्डित-सा अनुभव करती हूँ। उनके स्नेह और प्रोत्साहन के रेशमी धागों से मेरी रचना के मुक्ता पिरोये हुए हैं। 'मानस्तम्भ' का रेडियो-प्रसारण सुनकर हर्ष-विह्वल हो उठी थीं वे। उनकी प्यार-भरी शाबासी से भरी हल्की थपकन और मुस्कराती मुख-छवि की याद आज सिहरन उत्पन्न कर देती है। 'वीतराग' उन्होंने पूरा पढ़ा था और कहा था कि मंच के लिए शायद कुछ बड़ा है और गूढ़, पर ऐसा ही रहने दो—बहुत कुछ है इसमें; प्रस्तुति के समय निर्देशक मनोनुकूल सामग्री छाँट लेंगे; पाठक को तो एक समग्र झाँकी मिल जायेगी भगवान के जीवन और सिद्धान्तों की। 'दिव्यध्वनि-छन्द' आधा लिखा गया था उनके सामने। जितना लिखा था, उतना उन्होंने पूरे मनोयोग से पढ़ा था और कुछ परिवर्तन, कुछ सुझाव, प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अपने हाथ से अंकित किये थे। काश! आज उनका

ममता भरा सखी-भाव इन कृतियों की सम्पूर्णता पर मुझे अधिक सजीव और प्राणमय हर्ष से भर सकता।

० ० ०

अब कुछ शब्द जिनका सीधा सम्बन्ध नाटक की विधा और चरित्र-चित्रण से है :

विधा के विषय में यह कहूँगी कि बचपन से भगवान के जीवन की झाँकियाँ पंचकल्याणक उत्सव के उन अवसरों पर देखने को मिलीं जब किसी भी नव-निर्मित मंदिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा होती थी। कलाकार के हाथ से पत्थर से गढ़ी हुई मूर्ति को 'भगवान' के रूप में प्रतिष्ठित करने का अभिनय भावनाओं के उदात्तीकरण का मूर्तिमान साधन है। श्रद्धापूरित अभिनय की यह प्रक्रिया सचमुच ही गर्भमंगल से लेकर मोक्ष-कल्याणक तक पहुँचते-पहुँचते भावावेश में डूबे हृदयों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है कि भावना-शील प्राणी पत्थर की मूर्ति में भगवान के दर्शन करने लगते हैं।

सो, 'पंचकल्याणक' अभिनय-प्रणाली श्रद्धालुओं के हृदय से उपजी, धार्मिक उत्सव के रूप में प्रस्थापित, एक तरह की लोकमंच-विधा है, जिसमें बाहर के कलाकार-अभिनेता भाग न लेकर समाज के श्रद्धालु उपासक, भावनावश भाग लेते हैं। इस प्रकार के पंचकल्याणकों की प्रस्तुति की सफलता लोक-कला की साधना के साथ-साथ श्रद्धा और भावना की दृष्टि से आंकी जाती है। जैन तीर्थंकरों के ये पंचकल्याणक (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण) जैन समाज के लोकमंच पर जिस प्रकार परम्परा से प्रदर्शित किये जा रहे हैं, उनकी विशेषता यह है कि तीर्थंकर के माता-पिता को अभिनीत करने वाले मूर्धन्य सद्गृहस्थ आजीवन संयम-व्रत साधते हैं, और धार्मिक कार्यों के लिए सामर्थ्यानुसार विपुल धन दान करते हैं। सारे पात्र और सारा वातावरण व्रत-नियम-संयम की भावनाओं से आपूरित रहता है।

सदैव ऐसा लगा कि, क्यों न धार्मिक उत्सव की यह विधा, अभिनय की लोकमंचीय विधा के रूप में विकसित और स्थापित होकर, भगवान के जीवन से उन सबको परिचित कराये जो किसी भी अन्य धर्म के अनुयायी होते भी महान् पुरुषों के जीवन और दर्शन को अभिनय-विधा से ग्रहण करना चाहेंगे; और क्यों न यह पंचकल्याणक की अभिनय-शैली मंच-नाटकीय विधा में संयोजित की जाये ! भगवान के जीवन को दरशाने की यह विधा, जो परम्परा से व्यवस्थित और स्वीकृत है एवं उसी क्रम में बद्ध है जो भगवान की पूजा करने में प्रयुक्त होती है, निश्चय ही एक समन्वित नियोजित नाटक-लेखन का पथ प्रशस्त करती है। इसलिए इन नाटकों का रूप उस विधा पर आधारित है।

पर, इस आकार-प्रकार की विधा को नाटक में साधने में बहुत बड़ी कठिनाई आड़े आती है। जबकि पंचकल्याणक समारोह में 'मूर्ति' भगवान की भूमिका निबाह देती है, मंच पर किसी व्यक्ति को इस भूमिका में लाने की न ही परम्परा है और न ही सामान्य जैन जन-मानस को यह ग्राह्य हो पाता है। अतः नाटक में महावीर के वैराग्य लेने के बाद के दृश्यों में छाया-चित्र या भामण्डल को भगवान की उपस्थिति के प्रतीक-रूप में लायी हूँ।

नाटकों की भाषा के विषय में आश्वस्त होना कि वह सबको पसन्द आयेगी और वह उचित एवं सरल लगेगी अथवा कठिन और जटिल, इन सबका समाधान करना कठिन काम है। महावीर भगवान जैसे महान् व्यक्तित्व के जीवन के पूरे विस्तार एवं उनके दर्शन के विषय में सरल-सहज होना तो दूर, शब्द मुखरित करने का साहस पूरा मनोबल बटोरकर करना पड़ा। कहीं-कहीं भोजपुरी भाषा को प्रयुक्त किया है। यह भाषा उस समय की नहीं है पर भगवान की जन्मभूमि वैशाली है और वहाँ की वर्तमान जन-भाषा एक प्रकार की 'भोजपुरी' है जो अतीत और वर्तमान में एक सम्पर्क-सूत्र-सा बनकर आ सकती है, यह दृष्टि मुझे सुहावनी लगी।

चरित्र-चित्रण में, विशेषकर माँ त्रिशला के चरित्र को एक सामान्य माँ की तरह मानने का मन नहीं हुआ। तीर्थंकर बनने वाली आत्मा असाधारण होती है जो जन्म-जन्मान्तरों में अनेकों प्रकार के असीम सुख, असीम दुख, असंख्य अनुभवों से गुजरती तीर्थंकरत्व की क्षमता प्राप्त करती है। ऐसी आत्मा की जननी भी साधारण नहीं हो सकती जैसी हम किसी भी एक नारी की कल्पना करते हैं। त्रिशला की अपने पुत्र महावीर के प्रति भावना-प्रतिक्रियाएँ एक अन्य स्तर और आयाम की ही होंगी, सम्पूर्ण ममता में निमज्जित होते हुए भी, ऐसा मैंने माना है।

काव्य-रूपक के दो पात्रों, 'कालपुरुष' और 'कथावाचिका' की भूमिका उनके नामों में निहित है। एक प्रकार से वे सूत्रधार की भूमिका निबाहते हैं। वे उन सब पात्रों और परिस्थितियों के प्रतिनिधि-प्रतीक हैं जिनके विषय में पार्श्व से शब्द बोले जा रहे हैं, पर चरित्र या परिस्थितियाँ मंच पर न उपस्थित हैं, न पूर्णरूपेण घटित होती हुई दिखायी गयी हैं। कालपुरुष और कथावाचिका, मंच पर आकर अपने अभिनय द्वारा, काल और अन्तराल का बोध देते हैं। कथा-क्रम को आगे बढ़ाते हैं, पृष्ठ-भूमि को उजागर करते हैं; और आवश्यकतानुसार कई भूमिकाओं और स्थितियों को अभिनीत करते हुए पूरे रूपक की कड़ियों को जोड़ते हैं।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कोष्ठकों में दिये गये संकेत सुझाव ही हैं, निर्देशन नहीं। इनके द्वारा रूपक की विषय-वस्तु का अन्तःअर्थ अधिक स्पष्ट हो—यही उद्देश्य है। प्रत्येक निर्देशक अपनी व्यक्तिगत दृष्टि और सम्प्रेषण-मान्यता के अनुसार इसकी नृत्य-योजना एवं मंचीय योजना को ढालेंगे।

इन तीनों रूपकों के सृजन का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन्हें जनसभाओं में मंच पर प्रस्तुत किया जाये। प्रेक्षागृहों का मंच सबसे अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि वहाँ प्रकाश-आयोजन और ध्वनि-निक्षेप के यान्त्रिक साधनों का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु सब जगह ऐसे साधन उपलब्ध नहीं होते। अतः प्रस्तुति के रूप और विधि, और विस्तार में क्या परिवर्तन किये जायें इस विषय में अनुभवी, दक्ष नाट्य-निर्देशक स्थानीय स्थिति और उपादानों के अनुसार स्वतन्त्र निर्णय लेंगे। 'मानस्तम्भ' मूल रूप में रेडियो-रूपक है जहाँ पात्रों के वार्तालाप और कथा-प्रवाह अदृश्य ध्वनि पर आश्रित हैं। देश के प्रायः सभी आकाशवाणी-केन्द्रों से समस्त भारतीय भाषाओं में इसका प्रसारण और पुनः प्रसारण हो चुका है। 'मानस्तम्भ' के पात्र सरलता से मंच पर आ सकते हैं। पृष्ठभूमि में हुई घटनाओं को 'फ्लैश बैक' पद्धति पर, 'पूर्व घटित' के रूप में प्रक्षेपित किया जा सकता है। सूत्रधार की परिकल्पना भी की जा सकती है जो कथा के सूत्रों को जोड़ता है। मंच पर सूचना-पटों का भी उपयोग हो सकता है। इसी प्रकार, मैं सोचती हूँ कि 'दिव्यध्वनि-छन्द' को विभिन्न पात्रों के द्वारा काव्य-पाठ के रूप में भी मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। 'वीतराग' मंच-रूपक सहज स्वभाव से गूँदी गयी वह तरल माटी है जिसे निर्देशक मनमाने साँचों में ढाल कलात्मक रुचि के अनुसार सजा-सँवारकर प्रदर्शन योग्य बना सकते हैं। तीनों में से कोई भी नाटक चुनें, नाटक या रूपक को पढ़कर रचना की सम्पूर्ण भावभूमि को आत्मसात् करने के पश्चात् ही प्रस्तुतीकरण आयोजित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इन रचनाओं में मेरी दृष्टि प्रधानतः नाट्य प्रस्तुति की रही है, ऐतिहासिक तथ्यों की बारीकी से छानबीन करके अनेक विरोधी या विषम मान्यताओं में से किसी एक को चुनकर उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को प्रतिष्ठित करने की नहीं। फिर भी, मेरे अनुरोध पर समूची पाण्डुलिपि प्रसिद्ध इतिहासकार और साहित्य-सर्जक डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने आद्योपान्त देखने की कृपा की, और दो-तीन स्थलों पर संशोधन सुझाये। इसी प्रकार मूर्धन्य इतिहासकार डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने उन स्थलों का विशेष निरीक्षण किया जहाँ ऐतिहासिकता के विषय में मैं आश्वस्त होना चाहती थी। उन्होंने प्रायः सभी ऐसे स्थलों को निरापद एवं समीचीन बताया। इतना ही नहीं, उक्त दोनों विद्वानों ने नाटकों को इनकी शिल्पगत और साहित्यिक उपलब्धि के लिए सराहा है। मैं उनके प्रति ऋणी हूँ।

प्रिय श्री आलोक प्रकाश जैन ने इन रचनाओं को बहुत ध्यान से पढ़कर जो सुझाव दिये उनसे मैं लाभान्वित हुई। कई स्थल ऐसे हैं जहाँ मैंने चरित्रों को मानवीय परिवेश में कल्पित करना उचित समझा और कथा-वस्तु से उद्भूत होने वाले प्रभाव को प्राथमिकता दी। उदाहरणार्थ, यज्ञ की क्रूरता से उत्पन्न यज्ञकर्त्ता

की दयार्द्रता तथा व्याकुलता को दर्शाने के लिए चन्द्रदीप्ति का कथा-प्रसङ्ग नितान्त कल्पित है। महावीर युगीन दार्शनिकों के मत-वैभिन्य को अनेकान्त की धुरी पर चक्रायित करने में भी मैंने कल्पना से काम लिया है। दार्शनिकों के नाम उनकी विचारधारा या विचारधाराओं के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए प्रतीक रूप में नियोजित हैं, न कि उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति के रूप में।

भारतीय ज्ञानपीठ के प्रति आभारी हूँ कि मेरी यह कृति निर्वाण महोत्सव पर प्रकाशित साहित्य में अंशदान बन सकी। ज्ञानपीठ की परिकल्पनाओं के पीछे साहू शान्तिप्रसाद जी की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा और पथ-प्रशस्ति है। उनके प्रति आत्मीय श्रद्धाभाव समर्पित है।

उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री हस्तीमल जी, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी, मुनि श्री डॉ० नगराजजी, मुनिश्री यशोविजय जी की भगवान महावीर की जीवनी-परक रचनाओं से कथा-वस्तु के परिदृश्यों और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को समझने में सहायता मिली है। उनके श्री-चरणों में मेरी कृतज्ञता निवेदित है।

कृतज्ञ हूँ उन प्राचीन पूजा और प्रार्थनाकारों की जिनकी पंक्तियाँ बीच-बीच में उद्धृत की हैं कि वातावरण की प्रतिध्वनि हृदयों में गूंजे। कविवर रवीन्द्रनाथ के एक पावन गीत को समसामयिक भावभूमि को स्वरबद्ध करने के लिए आभार-पूर्वक स्वीकार किया है।

रचनाओं की मूलभूत सामग्री शास्त्रों और पुराणों पर आधारित है तथा घटनाओं की कड़ी जोड़ने में और पात्रों की भावाभिव्यक्ति में मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निर्देशित कल्पना का ही सहारा लिया है। दार्शनिक चिन्तन की प्रस्तुति में सावधान रहने का प्रयत्न किया है। फिर भी इतने बड़े परिपार्श्व को सँजोने में त्रुटि और भूल रहना सम्भव है। आशा है, विद्वज्जन सहृदयता-पूर्वक इस कृति को दृष्टिगत करेंगे। उनके संशोधन-सुझावों का स्वागत है।

शरत्-पूर्णिमा :
वीर निर्वाण संवत् : २५०१

कुन्था जैन

अनुक्रम

दिव्यध्वनि-छन्द १३
वीतराग ७१
मानस्तम्भ १२७

दिव्यध्वनि-छन्द

नृत्य-नाटिका

दिव्यध्वनि-छन्द

(भूमिका-गायन)

शाश्वत है यह सृष्टि, द्रव्य के
कण-कण में रूपों का नर्तन,
कालचक्र चलता अनादि से
रचता युग, करता परिवर्तन ।
सुख-दुख काल-चक्र के आरे
ऊपर उठते, नीचे आते,
बढ़ते घटते अविचल गति से
क्रमशः जन-जन सुख-दुख पाते ।
मानव जीवन का वह युग जब
कल्प-वृक्ष थे जीवन-आश्रय,
भोग-भूमि के सहज सुखों में
रत नर-नारी रहते निर्भय ।
कर्म-चेतना सुप्त, शक्ति का
बोध न अर्जन की तत्परता,
धीरे-धीरे युग समाप्ति पर,
प्रकृति रूप नव, रहा उभरता ।
उस युग के सभ्यता विधायक,
आत्म-साधना के अन्वेषक,
ऋषभनाथ पहले तीर्थंकर,
श्रमण-धर्म के आदिप्रवर्तक ।

(छन्द-परिवर्तन)

ऋषभ सुपौत्र मारीचि,
आत्म-जयी धर्म-धीर,
जनमे जन्मान्तर में,
जग-त्राता महावीर ।

(छन्द-परिवर्तन)

ऋषभ-युग और महावीर पुण्य गाथा ।
प्रसंग निर्वाण, नमित चरणों में माथा ।।

पूर्व-पीठिका

पहला दृश्य

[काल-पुरुष का प्रवेश, स्वरों के साथ नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : काल एक महाचक्र
मिटता है न बनता,
घूमता ही रहता है, शाश्वत की धुरियों पर।
काल-खण्ड जिसमें सुख बढ़ता है क्रमशः
वह है उत्सर्पिणी।
क्रमशः जहाँ घटता सुख
वह है अवसर्पिणी।
ऐसे अवसर्पिणी के एक काल-कक्ष से
उतरा वह खण्ड, जिसने
परिवर्तित की भोगभूमि —
भोगभूमि, जिसमें
कामना के पूरक थे
विविध भाँति कल्पवृक्ष।
एक साथ जनमते थे
युगल पति-पत्नी।
जगती के तत्त्वों में आया परिवर्तन···

(इस पंक्ति को दो-तीन बार दुहरायें, साथ-साथ प्रकृति के तत्वों...सूर्य, चन्द्र, तारे, पर्वत, झरना, इन्द्र धनुष, मेघ आदि प्रतीकों के छाया-चित्रों का प्रदर्शन)

मानव की धमनी में कर्म-जनित नर्तन।

(इस पंक्ति पर असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प एवं वाणिज्य के प्रतीक मानवों का प्रवेश)

[सामूहिक नृत्य-गीत]

झुरमुर हुए कल्पवृक्ष
सूर्य-चन्द्र चमके
शुभ्र नील नभ में
नव ताराग्रह दमके—
पर्वत के रजत-शिखर
आये धरा वरने,
डोल उठे सागर
गतिशील हुए झरने।
चंचल समीर-संग
आभा इन्द्रधनुषों की
सतरंगी सरसी।
पहना हरीतिमा ने
फूलों का परिधान,
चिड़ियों का कलरव
पखेरुओं का मोदगान
गूंज उठा सृष्टिनाद
नव साहस भरने।

पार्श्व-स्वर : पुरुषार्थ सजग साकार हुआ
जड़ में रस का संचार हुआ
पर चकित खड़ा मानव मतिभ्रम
क्या रूप धरेगा जीवन-क्रम ?

[ऋषभनाथ का प्रवेश। साथ में भरत (पुत्र), बाहुबली, (पुत्र), मारीचि (प्रपौत्र), ब्राह्मी (पुत्री), सुन्दरी (पुत्री)।]

पार्श्व-स्वर : ऐसे में प्रकटे ऋषभनाथ
वे आदि पुरुष, 'कृतयुग' के मनु,
मानव का भय, संशय हरने
आये कर में ले प्रज्ञा-धनु।

ऋषभ : लो ! विश्व व्यवस्था सार-भूत
है कर्मठ मानव ब्रह्म रूप !
जीवन यापन के छह साधन
जन का सहयोगी उत्पादन।

(छह मानवों को तथा ब्राह्मी, सुन्दरी, भरत, बाहुबली और मारीचि को क्रमशः लक्ष्य कर)

असि ! बने शत्रु-गण की बाधक।
मसि ! हो लेखन की आराधक।
कृषि ! धान्य-पूर्ण करदे धरती।
विद्या ! द्वारा शिक्षित जगती।
शिल्पी ! हों, हस्तकला-साधक।
व्यापार ! वणिज धन-उन्नायक।
ब्राह्मी ! भाषा लिपि-बद्ध करो।
सुन्दरि ! सुगणित का ज्ञान वरो।
सुत भरत ! बनो तुम चक्रेश्वर।
सामर्थ्यवान् प्रिय बाहुबली !
यश प्राप्त करो तुम अजर अमर।
मारीचि ! पितामह का दुलार
खोले चिन्तन के मुक्त द्वार।

(वाद्य-यन्त्र पर नृत्य-प्रारम्भ)

पार्श्व-स्वर : धरती के प्राण हुए पुलकित
जीवन में उपजा समाहार।
सामाजिकता का स्वर-संगम
निःसृत सर्जन-सरगम उदार।
शिल्पों का मोहक रूपायन
असि, मसि, कृषि, लिपि, नर्तन-गायन।

(गायन सामूहिक नृत्य—अधिक गतिमान)

लिपि-लेखन, छन्द, गणित साधे।
गृह, बाट, ग्राम, पुर, पुल बाँधे।
असि, मसि, कृषि, शास्त्र, शिल्प, वानिज
जीवन-यापन पथ संस्थापित।
है वर्ण-व्यवस्था सार-भूत
है कर्मठ मानव ब्रह्म रूप।

(नृत्य करते-करते सब का प्रस्थान)

[कथा-वाचिका का प्रवेश, स्वरों के साथ नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : नगरी अयोध्या, जो युद्ध को नकारती
कर्म की पवित्रता के सुफल स्वीकारती।

ऋषभ से महीपति,
यशस्वती सी भरत-मात,
बाहुबलि-जननी सुनन्दा,
पुत्र-पौत्र साथ।

(स्वरों के साथ-साथ उक्त पाँचों का प्रवेश और राज्य-सभा का आयोजन)

बैठे थे आदि-पुरुष सिंहासन पर प्रसन्न,
महिमामय राजभवन, श्रोता आनन्दमग्न।
नृत्य हेतु सुरपुर से उतरी नीलांजना,

(अप्सरा नीलांजना नर्तकी का प्रवेश)

देख सुर-सुन्दरी को सभा हुई चकितमना।
वाद्यवृन्द रचते थे स्वर-लहरी अनुपम,
आरोही-अवरोही द्रुततर-तम अनुक्रम।
नृत्यरत चकित दिव्य-देवी नीलांजना,
प्रति पद-निक्षेप मानो शतशत नृत्यांगना।

(स्वरों के साथ नीलांजना का नृत्य वाद्य-धुन पर)

पार्श्व-स्वर : बैठे थे विमुग्ध सब, सुधबुध भुलाये हुए
तन्मय आदिनाथ, नृत्य-छन्द में समाये हुए।
सहसा एक सम के तिहाई के मोड़ पर
लुप्त नीलांजना, न भंग आया तोड़ पर।
नृत्य-क्रम संभालने उतरी नयी अप्सरा,
केवल प्रभु-दृष्टि में ही, रहस्य यह उभरा।
इन्द्र ने विचारा था कि युक्ति यह चल जाये,
बोध होगा प्रभु को यदि अप्सरा बदल जाये।
प्रभु ने पहचाना मर्म, क्षीण-आयु नर्तकी,
उड़ गयी कपूर-सी, यही है गति मर्त्य की !

ऋषभ : क्षण-भंगुर जग-जीवन,
सारहीन है ममत्व,
मैं क्यों ? क्या ? कब तक ?
क्या प्राणों का सार-सत्व ?

(चिन्तन की मुद्रा में)

यह राज्य भरत का, पुत्रों का
मेरा पथ अब, अपरिग्रह का

प्रत्यक्ष जगत् है उद्भासित
पर अन्तर्लोक अभी आवृत
एकान्त गमन, एकान्त मनन
तप से प्रदीप्त हो अन्तर्मन !

पार्श्व-स्वर : राज-भोग सिंहासन छोड़ दिये तत्क्षण,
त्याग-वैराग्य का प्रबुद्ध हुआ आकर्षण।

(धीरे-धीरे सब का प्रस्थान)

भरत बने राजा, प्रभु बने वीतरागी,
तप की ज्वलन्त शिखा जन-जन में जागी।
अम्बर थीं दिशाएँ—नग्न, सहचर था एकान्त,
तप की दुर्धर्षता से पावन किये वन-प्रान्त।

[कालपुरुष का प्रवेश और नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : आदिनाथ·····
स्रष्टा जो समाज के थे
द्रष्टा थे आत्मा के
पथिक अमरत्व के,
अंतर की प्रेरणा ने इंगित किया मार्ग
त्याग का, तपस्या का, संयम-वैराग्य का।
होकर दिगम्बर जब चले वन-प्रान्त को
शतशत राजपुरुषों ने भी पकड़ी वही लीक,
हुए साधु।

(इसी बीच मारीचि का प्रवेश)

पोता मारीचि, भरत-पुत्र, अति-तेजस्वी,
दीक्षित तो हुआ किन्तु संभ्रम था मन में
पथ-निर्माता हैं अन्य, पितामह ही वह सही—
मेरा क्यों बने वह जीवन का बन्धन ?
मैं भी तो स्वयंभू हूँ।
साधुता का लक्षण निर्ग्रन्थता ही क्यों ?
भूख-प्यास, आतप का सहना क्यों मोक्षमार्ग ?
विद्रोही होकर बनाया निज पंथ, निज शिष्यावलि
बारी-बारी कर भोग और योग वरण
मारीचि ही भवान्तर में
बना फिर महावीर !

(गीत)

महावीर मारीचि जीव ने
अभिनव भव-भव रूप धरा।
राग और वैराग्य भाव को
क्रम-क्रम सहज वरा॥
भीलराज पुरुरवा तानता था
जब धनु मुनिवर पर।
छीन धनुष भिलनी बोली—
वनदेव यही, वन्दन कर॥
मुनि से व्रत ले लिये, बना
सौधर्म इन्द्र मरणोत्तर।
निर्मल मन से युक्त भोग भी
भोगे उसने जीभर॥
जनमा बन मारीचि भरत-सुत
ऋषभनाथ का पोता।
फल काटे जन वही,
बीज जिस कर्म-बन्ध का बोता॥
ब्राह्मण बना कुतप तेजस्वी
देवयोनि फिर पायी।
फिर पशु, फिर नर-देह
और फिर मुनि-मुद्रा पर्यायी॥
फिर त्रिपृष्ट बन युद्ध और
विद्या-धरियों को भोगा।
मरा अतृप्त नरक दुख पाये
अभी और क्या होगा?
स्वर्ग, नर्क, मानव, पशु गति पा
जनमा और मरा।
महावीर मारीचि जीव ने
अभिनव भव-भव रूप धरा॥
राग और वैराग्य भाव को
क्रम-क्रम सहज वरा।

•••

महावीर

[गर्भ-जन्म]

दूसरा दृश्य

पार्श्व-स्वर : बीते कोटि-कोटि वर्ष
ऋषभनाथ-गाथा रही गूंजती
पुराण वेद-शास्त्रों में,
तीर्थंकर परम्परा
व्याप्त वायुमण्डल में ।

[कालपुरुष का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

दो हज़ार पाँच सौ बहत्तर वर्ष पूर्व का
भरत-खण्ड, भारतवर्ष, पूर्वोत्तर प्रदेश
आधुनिक बिहार-प्रान्त,
जिसमें था।
मल्लों लिच्छवियों ज्ञातृकों के अठारह गणराज्यों का
संगठित समर्थ संघ, वज्जि गणतंत्र
जिसके नेता थे चेटक
पार्श्व-प्रभु अनुगामी, चेता, स्वतंत्र ।
राजधानी वैशाली
जनतांत्रिक प्रचलित प्रणाली ।

[कथावाचिका का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

इसी राजकुल की कन्या,
त्रिशला प्रियकारिणी ब्याही सिद्धार्थराज को
सिद्धार्थ.....
दिव्यज्ञानी गुणवान,
थे कुण्डपुर के ज्ञातृगण-उन्नायक

देते प्रेम-अभय सदा मानव समाज को।
कुण्डपुर·····
वज्जि गणराज्य-अंग
शोभा सुषमा का नित चर्चित प्रसंग
सिद्धार्थ और त्रिशला
श्रमण धर्म-पालक
उपासक पार्श्वनाथ के।
राज-युगल, ख्यातिप्राप्त—
वैवाहिक सुख-सौभाग्य
प्रणयचिह्न पुत्र नंदिवर्धन,
सुख के सोपान अभी और मानो शेष थे···
सुखद जीवन की, आषाढ़ शुक्ला षष्ठी का
एक मध्य-रात्रि-प्रहर
कि पलकों पर त्रिशला के, विभूतिमय स्वप्न-पंक्ति
उतरी, रोमांचित हो उठी, प्रियकारिणी·····

(त्रिशला का प्रवेश, जैसे स्वप्न-मग्न हो)

त्रिशला : यह कैसा आह्लाद हृदय पर छाया,
मैं जागृत हूँ—या स्वप्नपुरी की माया।
हैं ध्वनित चित्र, स्वर, स्पर्श कर रहे तन को,
अनुभूति अलौकिक करती पुलकित मन को।

(गायन—पूजाध्वनि के स्वरों में। साथ ही, सपनों में दिखी वस्तुओं को इंगित करते हुए त्रिशला का नृत्य-अभिनय)

सुर-कुंजर-सम कुंजर,[1]
धवल धुरंधरो।
केहरि केशर-शोभित
नख-शिख सुन्दरो।

---

१. त्रिशला के सोलह स्वप्न : (१) सफेद हाथी, (२) बैल, (३) सिंह, (४) कलशों से स्नान करती हुई कमला अर्थात् लक्ष्मी, (५) दो मालाएँ, (६) रवि, (७) शशि, तारा-मंडल सहित, (८) मीन युगल, (९) जल-पूर्ण स्वर्ण-घट, (१०) कमलों से भरा सरोवर, (११) गरजता सागर, (१२) सिंहासन, (१३) स्वर्ग का विमान, (१४) नाग विमान, (१५) देदीप्यमान रत्नराशि, और (१६) निधूर्म अग्नि।

कमला-कलस-न्हवन,
दुइ दाम सुहावनी।
रवि-शशि-मण्डल, मधुर
मीन-जुग पावनी।

(धुन परिवर्तन)

पावन, कनक-घट जुगम पूरन
कमल-कलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर
सिंह-पीठ मनोहरो।
रमणीक अमर-विमान
फणिपति-भुवन, रवि-छवि छाजई।
रुचि रतन रासि, दिपन्त बहन
सु तेज पुंज विराजई।

(त्रिशला का नृत्य करते करते प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : ये सखि, सोलह सुपने सूती सयनहीं।
देखे माय मनोहर पच्छिम रयनहीं॥

(वाद्य-यंत्र ध्वनि)

(सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रवेश, नृत्य-अभिनय)

उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवन-पति सुत होसी फल तिहें भासियो॥

(दोनों का समवेत नृत्य वाद्य-ध्वनि पर)

[इसी बीच ज्योतिषियों और चारणों का प्रवेश]

पार्श्व-स्वर (चारणों के) :

मंगल प्रभात—मंगल प्रभात
जय त्रिशला, जय राजा सिद्धार्थ।
पुण्य-पुंज चक्रवर्ती-धारिणी
भाग्यवती जननी प्रियकारिणी।

(नृत्य करते-करते सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रस्थान)

[कथावाचिका का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : सेवा में जननी की नियुक्त देवी अप्सराएँ
स्नान, शृंगार, वसन, नित नवीन जतन करें।

बीते नव-मास, धर्म मंगल-मन-मोद भरे
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, प्रकटे त्रिशला के नन्द
स्वर्ण-वर्ण देह शुभ लक्षण प्रत्येक अंग।

(पूजा स्वर)

मति-श्रुति-अवधि विराजित जिन जब जनमियो,
तिहुं लोक भये शोभित सुरगन भरमियो ॥

(इंद्र, शचि, देवी-देवताओं का प्रवेश, घंटों की ध्वनि, देवलोक का दृश्य)

कल्पवासि-घर घंट-अनाहद बज्जिया।
ज्योतिष-घर हरिनाद सहज गलगज्जिया ॥

(धुन-परिवर्तन)

कम्पित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो ॥

[नीचे दिये गये स्वरों के साथ इन्द्र-इन्द्राणी, देवताओं का नृत्य अभिनय। इन्द्र-इन्द्राणी घर-परिवार सहित सिद्धार्थभवन जाते हैं; भवन की तीन प्रदक्षिणा देते हैं। फिर गुप्त रूप से इन्द्राणी त्रिशला के शयन-कक्ष में जाकर उन्हें मायामयी निद्रा में सुला, भगवान को गोद में ले आती है और इन्द्र के हाथों में जन्माभिषेक के लिए सौंप देती है। वे भगवान को मेरुपर्वत पर स्थित पाण्डुक-वन में ले जाते हैं, वहाँ पाण्डुकशिला पर विराजमान करते हैं। फिर क्षीरसागर से जल भर कर सुमेरु पर्वत स्थित पाण्डुक-शिला तक हाथों-हाथ लाये जाते हुए १००८ कलशों से भगवान को स्नान कराते हैं।]

(धुन-परिवर्तन)

तिहिं करि हरि चढ़ आयउ सुर-परिवारियो।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय जिन जयकारियो ॥
गुपत जाय जिन-जननिहिं सुख निद्रा रची।
मायामयि सिसु राखि तौ जिन आन्यो सची ॥

(धुन-परिवर्तन)

आन्यो सची जिन रूप निरखत नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरिणे सहसलोचन पूजिये ॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईशान इंद्र सु चंद्र-छवि सिर छत्र प्रभु के दीनऊ ॥
लंघि गये सुरगिर जहाँ पांडुक-वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक-शिला तहँ अर्द्धचंद्र समान मणि-छवि छाजहीं ॥

(धुन-परिवर्तन)

रचि मणिमंडप सोभित मध्यसिंहासनो।
थाप्यो पूरब-मुख तहँ प्रभु कमलासनो॥

(धुन-परिवर्तन)

बाजने बाजहिं सची सब मिलि धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब देव कौतुक धावहीं॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं हाथ सुरगिर ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इंद्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं॥
करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतहिं सेवा राख सुरपति आप सुरलोकहिं गये॥

(नृत्य करते करते सबका प्रस्थान)

[कालपुरुष का प्रवेश—नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : आंचल में भर मोद, बही सौरभमय मलय समीर।
तीर्थंकर बालक जनमा है हरने सबकी पीर॥
नव-जीवन निर्माण हेतु बन्दी-जन विचरे मुक्त।
वर्धित धन-सम्पत्ति विश्व की, सत्य-भावना युक्त॥
पर्वत, मरु-थल, चट्टानों से शक्ति-किरन बिखरीं।
स्वर्ण-रजत मुद्राओं से भर कनक-डाल सिहरीं॥
जन-स्वर हर्षित गूँज उठे, शिशु 'वर्धमान' सुख-खान।
वसुधा पुलकित, धन्य-धन्य दिशि-दिशि व्यापक कल्यान॥

•••

तीसरा दृश्य

[महाराज सिद्धार्थ और त्रिशला का प्रवेश]

सिद्धार्थ : प्रिये !
नंद्यावर्त प्रमोद-भरा
सपने-रञ्जित आकाश, धरा
पर अन्तर्मन में अकस्मात्
गुञ्जित होता विस्मय-निनाद
है आठ वर्ष का वर्धमान
पर स्वयंबुद्ध अति-ज्ञानवान,
गुरु द्वारा सन्मति नाम-करण
गुण जन्म-जात, होते न वरण।

त्रिशला : राजन् ! मैं भी विस्मय विमुग्ध
है प्राण-अंश सम्पूर्ण सिद्ध !
नयनों की झीलों में बिम्बित
हैं तीन लोक; मैं, चकित भ्रमित !
(अकस्मात् हर्षविह्वल संदेशिनी का प्रवेश—नाचती हुई सी बोल उठती है)

संदेशिनी : ओ क्या देखा ? क्या सुना विशेष ?
मैं लायी अद्भुत संदेश
सुध भूली निज-मन आवेश
सन्मुख माँ त्रिशला, सु-नरेश !
(रानी त्रिशला और सिद्धार्थ की उपस्थिति को अवगत कर क्षमा मुद्रा में)
माँ त्रिशला जय ! जय कुण्डनरेश।
माँ त्रिशला जय ! जय कुण्डनरेश।

त्रिशला : संदेशिनि ! बोलो, निःशंक
तुम पर क्या छाया आतंक ?

संदेशिनी : है बाहर बालक-मण्डली
वह आयी तज क्रीड़ास्थली

सिद्धार्थ : क्या वर्धमान ? उसके साथी ?

सि० और त्रि० : बाहर क्यों ? उनको ले आती !

(संदेशिनी का प्रस्थान)

[वाद्य-ध्वनों पर चार बालकों का प्रवेश। सिद्धार्थ और त्रिशला प्रसन्न-चित्त हो उन्हें देखते हैं, पर वर्धमान उनमें नहीं है यह देख चकित शंकित]

सिद्धार्थ : (स्वगत) इनके मुख पर कैसी उमंग ?

त्रिशला : (स्वगत) पर वर्धमान क्यों है न संग ?

सिद्धार्थ : (बालकों से) प्रिय कीर्ति ! सुबाहु ! सुरुचि ! सौमित्र !
है कहाँ तुम्हारा निकट मित्र ?

कीर्ति : है मित्र हमारा महावीर
(बहुत उत्साह भरे स्वर में)
वह टहल रहा है नदी-तीर

सुबाहु, सुरुचि, सौमित्र : (एकसाथ ज़ोर से)
हाँ,···महावीर···वह महावीर···
वह महावीर···वह महावीर···

(नाचने लगते हैं खुशी से)

एक बालक : हम खेल रहे थे उपवन में
इक विषधर आया फन ताने

दूसरा बालक : हम भय से भर कूदे-फाँदे
हो गये सन्न, धिग्घी बाँधे

तीसरा बालक : पर वर्धमान कब घबराया ?
जा सर्प पास वह मुस्काया

चौथा बालक : ऐसे चुमकारा विषधर को
जैसे वह कोई प्रियवर हो

चारों बालक : हम सब अचरज में भरे भरे
भागे भागे इस ओर बढ़े
देखा, न वहाँ थे महावीर
जा पहुँचे थे वे नदी तीर

(त्रिशला अपने में सार्थक हो ऊर्ध्व की ओर ताकती हुई जैसे वर्धमान को देख रही हो)

त्रिशला : मैं समझी, उसका सहज भाव
विकसित आत्मिक बल का प्रभाव

(बालकों से)
तुम हो भोले-भाले बालक
डूब रहे हो अचरज में—
कैसे जुड़ा प्रेम का नाता
वर्धमान और विषधर में !
सुनो, अगर तुम सच्चे मन से
पशु-पक्षी को कर लो प्यार।
दानव-मानव को अपनाओ
वे न करेंगे तुम पर वार।
यदि चोट उन्हें ना पहुँचाओ
तो सत्य वीर तुम बन जाओ।

बालक : तो प्यार करें और वीर बनें
यह सीधा सा जादू गुन लें।
पशु-पक्षी दानव बनें मीत
क्यों भय से, फिर हो कोई भीत ?
पर वर्धमान है 'महावीर'
वह महावीर, वह महावीर

(बालकों का प्रस्थान)

सिद्धार्थ : (त्रिशला से)
प्रिये !
वर्धमान की करुणा महती
मेरा मन आशंकित करती।
वैशाली गणतंत्र, धन-धान्य युक्त है
किन्तु कहाँ दोषों से विमुक्त है ?
आस-पास के राजतंत्र सब
करते कितना अनाचार
वर्धमान की युवा अवस्था
सह न सकेगी यही प्रहार।
हिंसा-असि का कुटिल घात
कैसे झेलेगा यह कुमार ?

त्रिशला : राजन् !
महावीर-छवि पद्म-नाल पर विकसित उज्ज्वल फूल
कर्दम-तल में कमल फूलता, क्यों हम जाते भूल ?

(हर्षित और आश्वासित हो नृत्य करते करते
दोनों का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[एक राजतंत्रीय राजधानी के बाजार का दृश्य। एक ओर पशुविक्रेता, दूसरी ओर दास-दासी विक्रेता, मध्य में मदिरालय का स्वामी खड़ा है। एक नट-नटी युगल गाते नाचते प्रवेश करता है]

नट-नटी : यह राजतंत्र ···यह राजतंत्र···
है प्रजा दास, राजा स्वतंत्र
(धुन-परिवर्तन)
हम राजा अपने मन के
नाचें कूदें, नट बनके
गुरु 'चार्वाक' के चेले
हमने न कभी पापड़ बेले
जो हाथ लगे हथियाओ
मूँछों पर ताव चढ़ाओ
थैली भर मुद्रा लाओ
मद-मस्त पियो और खाओ
यह कंचन सुवरन काया
इसको कहते क्यों माया ?

[एक ओर से राजपुरुषों का प्रवेश, दूसरी ओर से यज्ञ-पुरोहित पंडित का वाद्य-धुन पर प्रवेश। राजपुरुषों को नट-नटी घेर कर, पशु-विक्रेता के पास ले जाते हैं। स्वरों के साथ अभिनय-नृत्य]

पार्श्व-स्वर : यह पशु-बिक्री की हाट
देखो तो इसके ठाठ
क्या ऊँचे कद के बैल
हिरनों-बकरों की रैल
आँखें, मुखड़े भोले-भाले
मत झाँको इनमें मतवाले
है अग्नि-धूम के यह स्वाहा
बेबोल, करो तुम मन चाहा
बस आँखें मींच, इन्हें काटो
पत्थर की सिल से दिल पाटो

(वाद्य-धुन पर राजपुरुष पशु खरीदकर दूसरी ओर खड़े पुरोहित को देते हैं और उधर से प्रस्थान कर जाते हैं। पुरोहित वाद्य-धुन पर नृत्य-अभिनय करता, जैसे पशु उसके कब्जे में है, दूसरी ओर से प्रस्थान करता है)

[दो अन्य राजपुरुषों का प्रवेश। नट-नटी उनको घेर कर मदिरालय के पास ले जाते हैं]

पार्श्व-स्वर : मदिरालय कितना सुखकारी
भूलो दुनिया, चक्करदारी
पीओ, पीओ, खो दो होश
डूबो, डूबो खोलो कोष
ना हो धन तो, धक्के खाओ
घूरे पर जाकर सो जाओ।

(राजपुरुष उन्मत्त हैं, पिये हुए हैं, उनका वैसा ही नृत्य-अभिनय—वे लुढ़क कर सड़क पर गिरते हैं, कातर मुद्रा में)

[अन्य दो व्यक्तियों का प्रवेश जो श्रेष्ठी-धनी प्रतीत होते हैं। नटनटी उन्हें दास-दासी विक्रेता के पास ले जाते हैं। नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : दास-दासियों की दूकान
इस पर बिकता है इन्सान
प्राणों का होता व्यापार
दासी बन जातीं उपहार
विक्रेता को धन से प्यार
क्रेता पाता सब अधिकार
नर-नारी नाना रंग रूप
कोई छाया, कोई धूप

[इसी बीच में एक ओर से हाथ में फूल के गजरे लिये एक मालिन का प्रवेश, और पान-गिलोरी लिये एक सुगन्धी का प्रवेश। दूसरी ओर से दो संभ्रांत दिखती (राजकुमारी-जैसी) नारियों का प्रवेश। उन चारों ने दास-दासी बिक्री के दृश्य अवाक् होकर देखे हैं। वाद्य-धुन पर मालिन और तम्बोली का नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर : (मालिन के)
ले लो फूल, ले लो हार
(बार बार स्वरों की गूँज)
छोड़ो निर्दय अत्याचार
(बीच बीच में वाद्य-ध्वनि)

पार्श्व-स्वर : (तम्बोली के)
ताम्बुल, पान गिलौरी मोलो
(बार बार स्वरों की गूंज)
प्राणों का रस-रक्त न तोलो
(बीच बीच में वाद्य-ध्वनि)
(दोनों युवतियाँ बढ़ कर गजरे ले, जूड़े में लगाती हैं और पान ले मुख में रखती हैं। नृत्य-अभिनय)

पार्श्व-स्वर : (दोनों युवतियों के)
हम सीधे मानव, सरल भाव
हमको भाता रँग-रूप चाव
पर ये पुर, हिंसा-मत्त क्रूर
प्राणी का प्राणी शत्रु क्रूर

नट-नटी : तुम कौन देश से आयी हो ?
किसका संदेशा लायी हो ?

युवतियाँ : हम ग्राम कुण्डपुर से आये
इस हाट-बाट में भरमाये
हैं साथ हमारे वर्धमान
सिद्धार्थ-पुत्र, अति दयावान
वे छिटक गये हम सखियों से
पहुँचे होंगे सरिता-तट पे
हम उन्हें खोजने आयी हैं
यह दृश्य देख अकुलायी हैं
हम यहाँ न इक पल रुक सकते
क्रन्दन न किसी का सुन सकते
(दोनों युवतियों का प्रस्थान)

नट-नटी : (और अन्य पात्र)
यह क्या संदेशा छोड़ गयीं ?
अन्तर को छेड़ झिंझोड़ गयीं।
करुणा, कोमलता बरसातीं
वे वर्धमान के गुण गातीं
वैशाली जनपद की नारी
कर गयीं सुखी मन हितकारी
(नट-नटी हतप्रभ से हो युवतियों के वाक्य दोहराते चले जाते हैं। पीछे-पीछे तीनों विक्रेता, तम्बोली और मालिन— सबका आगे की पंक्तियों को गाते-गाते प्रस्थान)

हम सीधे मानव, सरल भाव
हमको भाता रँग रूप चाव
पर ये पुर, हिंसा-मत्त चूर
हम अभी कुण्डपुर चलें दूर

[पार्श्व से ऐसी ध्वनि जैसे बैलगाड़ियों पर सवार हो बहुत से यात्री जा रहे हों, बैलों के गले से बँधी घंटियों की ध्वनि। यदि छायाचित्र में बैलगाड़ियाँ जाती हुई दिखाई जा सकें तो दिखा दें]

•••

पाँचवाँ दृश्य

[वैशाली का मदनोत्सव]

गायनस्वर : झुक आयीं आम की डालियाँ
आकाश नीला,
मंजरी-पताका फहरा रहा
ऋतुराज पीला।
वैशाली नाच उठी,
तत ताता मची धूम।
मदनोत्सव रास रचा,
गाती कोकिला झूम।

[पाँच युवकों का वासंती वस्त्रों में प्रवेश। वे धनुविद्या और शास्त्रार्थ का अभिनय करते हुए नृत्य करते हैं। साथ ही पाँच युवतियों का वासंती वस्त्रों में आकर युवकों के साथ युगल-नृत्य तथा वाद्य-वादन का अभिनय]

पार्श्व-स्वर : लहरों की स्वर्ण किरण
गंडकी-नीरा में
नील पद्म-दल फूले मंगल पुष्करणी में।
(चंदना का प्रवेश)
लिच्छवी-कुमारी यह चन्दन-सी चन्दना
केसर-पराग चिरच करती अभ्यर्थना।

(चन्दना युवक-युवतियों के साथ नृत्य करती-करती तिलक लगाती है, मालाएँ देती है)

चन्दना : वैशाली में, मदनोत्सव वेला
सकुटुम्ब प्रीति-मिलन, जन-जन का मेला
करती अभ्यर्थना मैं सारे गणराज्य की।
वैभव की माला की मणि मेरी बहिनें
वैशाली वंश के प्रताप की ये किरणें।
मृगावती रानी साथ कौशाम्बी नृप के,
बहिन पद्मावती साथ अंगराज के,

शिवादेवी रानी है अवन्ती नृपराज की,
मगधराज बिम्बिसार की प्रिया चेलना,
दशार्ण के नरेश की वल्लभा सुप्रभा।
दूर-दूर राज्यों से आये प्रिय पाहुन
स्वागत में पलक बिछा, करती आवाहन।

वासवी : (युवतियों में से एक)
चन्दना ! चन्दन सी निर्लेप छटा शिखा रूप
सरोवर में कमल ज्यों, सुहासिनी मधुर धूप।

चन्दना : वासवी ! ज्येष्ठा ! सुदर्शना ! शीलमणि !
रूपसुन्दर ! गुणशीला ! महामाया ! रत्नकर्णा !
किन्तु कहाँ वर्धमान, कुण्डपुर नरेश के ?
कहाँ रहे उदयन, पुत्र शतानीक के ?

शीलमणि : उदयन अभ्यास-रत वीणा के वादन में
वर्धमान टहल रहे चिंतन-रत उपवन में

रत्नकर्ण : उनकी मुखमुद्रा नित वीतराग मन-भावन
नेत्रों की कोमल गहराई में घन-सावन

रूपसुन्दर : निश्चय ही महावीर साथ थे वहाँ,
जहाँ हुई प्रतियोगिताएँ
धनुविद्या, नृत्य-गायन,
चित्र-सज्जा, वार्ताएँ।

(युवक-युवतियों का सामूहिक नृत्य)

पार्श्व-स्वर : पूरे सप्ताह भर,
वासंती सात दिन।
विद्याधर से कुमार,
अप्सरा कुमारियाँ।
कलियों की चटकन पर
युवती-दल मचल उठे
युवकों में होड़ लगी
रोम-रोम फड़क उठे।

(घोषक के स्वरों पर युवक-युवतियाँ मंच पर विशेष-विशेष मुद्रा में)

पार्श्व-स्वर : (घोषक के)
सर्वश्रेष्ठ मदन बाल
सर्वोत्तम मदनिका

निर्वाचन उत्सव की
उठ रही यवनिका।

[कथावाचिका और कालपुरुष का साभिनय मंच पर प्रवेश]

पार्श्व-स्वर (घोषक के) :
मंडप के मंच पर करते प्रवेश
वज्जिगण अधिनायक सिंह वर-नरेश
संग हैं, सुशोभित गांधारी बाला
महारानी रोहिणी,
सिंहभद्र महानायक
निर्णायक धनुर्धर के।

(राजा सिंह, रानी रोहिणी एवं महानायक सिंहभद्र (चेटक-पुत्र) सब आकर स्थान ग्रहण करते हैं। विजय की पुष्पमालाएँ लिये अनुचर प्रतीक्षारत हैं।)

पार्श्व-स्वर : वैशाली की जय। वज्जि संघ की जय।
लिच्छवि-नरेश महाराजा चेटक की जय
गणतंत्र की जय···
(नीचे दिये स्वरों के साथ कालपुरुष और कथा-वाचिका का अभिनय-नृत्य)

पार्श्व-स्वर : आसपास ग्रामों से
दल-बादल घुमड़े हैं
प्रतियोगी, दर्शकगण
निर्णय को उमड़े हैं
प्रिय अभय, मेघराज, प्रभंजन, वारिषेण,
सूर्यवीर, मणिभद्र, मृत्युंजय, मृगीयेष;
धनुर्विद्या-दक्ष राज्यपालक, कुमारदत्त
पा गया धनुष-बाण नया अर्थ, नया बाण

सिंहभद्र : प्रज्ञा के अश्व की गति निर्बाध है
जितनी लम्बी उड़ान, उतना संकट वितान
ज्ञान के घोड़े की वल्गा जो थाम सका
जिसकी भुजाओं में सिंह की सबलता
बाण में प्रभंजन, है लक्ष्य में सफलता
किन्तु तीर जिसका दया से प्रत्यंचित
घाव से विमुख, उपचार को समर्पित

निर्भय जो रहता है, वह तो है मात्र वीर
निर्भय जो कर दे, वही है महावीर।
शुभ्र कान्त मोती, बस एक ही था वैसा
धनुर्वीर वर्धमान, लक्ष्य-दक्ष ऐसा।
(साधुवाद ! साधुवाद ! साधुवाद ! की सामूहिक ध्वनियाँ)

[अम्बपाली का प्रवेश। दर्शकों में उत्साह की लहर की ध्वनि]

दर्शक-स्वर : राज-सुन्दरी अम्बपाली की जय।
कला-साम्राज्ञी अम्बपाली की जय।

[नीचे दिये पार्श्व-स्वरों के साथ मंच पर काल पुरुष और कथावाचिका का अम्बपाली को इंगित करते हुए नृत्य-अभिनय—वाद्य-स्वरों के साथ]

पार्श्व-स्वर (चंदना के)
गरिमा वैशाली की,
नृत्य-पारंगता
अम्बपाली, नगर-वधू
जन-मन आराधिता।
इनकी प्रसिद्धि है
न केवल छन्द-अभिनय की
पारखी ये, प्राणमय
स्पन्दन, स्थिति, लय की।
उतरी है गहरे में
उनकी अन्तरात्मा
साधी है जीवन में,
समता समानता।

अम्बपाली : जीवन के मरुस्थल में
कला-उद्यान,
शिशिर की प्रखरता में
मधु की मुस्कान।
प्रस्तर के अंगों में
भरती कला-प्राण।
आँधी में ध्रुवतारा
आत्मा का मान।

किन्तु आज स्तंभित हूँ
कला की विराटता
उसकी निःसीमता का द्वार खोल आया है—
प्रतापी किशोर एक।
उसके संगीत में जल का निनाद
ताल में काल का चिरंतन प्रसाद
मुद्रा में पृथ्वी की स्थिर माया
स्वर में आकाश की प्रतिच्छाया
उसकी रेखाओं में भावी के इंगित
चन्द्र, सूर्य, भामण्डल गीतों में स्पन्दित
नेत्रों में यज्ञ-बद्ध पशु की कातरता
वाणी में ओज, उर, पवन-मुक्त मानवता
सम्पूर्ण प्रकृति का एक उपादान है
सारे चर-अचर का नाम वर्धमान है।

(नमन की मुद्रा में आ जाती है फिर मानो जागकर विजय-माला हाथ में ले आसन ग्रहण करती है। प्रतीक्षा में·····)

सामूहिक स्वर : साधुवाद ! साधुवाद···साधुवाद !

सिंहभद्र : (उत्साहित हो)
चित्त गद्‌गद् है महावीर-यश से
कहाँ नयन-तारा ? लगाऊँ उसे वक्ष से

अम्बपाली : (हाथ में मुकुट थामे)
शोभा-उत्सव का मुकुट
पहनाऊँ, कहाँ त्रिशला-नन्दन ?

(सब उत्सुकता से महावीर की प्रतीक्षा कर रहे हैं— 'वर्धमान कहाँ है ?'··· 'कहाँ है पुत्र महावीर ?'··· 'कुमार कहाँ है ?'··· की सम्मिलित ध्वनियाँ धीरे-धीरे लोप होती हैं।)

वाचक-स्वर : कहाँ है विजेता ? कहाँ है विजेता ?
अब किस जय को अधीर, अब किस जय को अधीर ?
मदनोत्सव का कुमार
मदनजित महावीर, मदनजित महावीर·····

(सब उत्सुकता व प्रतीक्षा में स्थिर मुद्रामें खड़े होते हैं। धीरे-धीरे दृश्य अन्धकार में लीन होजाता है। एक अकेले कुमार की छाया विचार-मग्न घूमती दिखाई देती है)

[नन्दिवर्धन का प्रवेश]

नन्दिवर्धन : कितना होता है यह सहज और स्वाभाविक
कि यौवन के गवाक्ष से
दीखे सब आकर्षक, रुचिर, मनोरम।
धरा की धमनियों में अंकुरित रंगीन राग
युवति-कटाक्षों में प्रतिबिम्बित हो सुहाग।
किन्तु मेरा अनुज वर्धमान
कहता है बारबार
"परिधियाँ परिवार की, महलों के लघुवृत्त
सभी कसे बन्धन हैं
रोकते विस्तार को—आत्मा के प्रसार को"
मन के जिस गवाक्ष से देखता वह धरती को
आमों की मंजरी को, भौंरों को
सरिता की लहरों को, सरोवर के पद्मों को
जन-जन को, नारी को, रमणी को
दृश्य वहाँ दूसरा है :
स्पर्श, रस, गन्ध की अनुभूतियों के उस पार
लहराता है आत्मा का दिगन्तव्यापी पारावार।
सब कुछ वहाँ अपना है, सब के हम अपने हैं
कैसे दिव्य सपने हैं!

उधर,
माता का वात्सल्य उच्छल अधीर है
'अविवाहित अब तक क्यों मेरा महावीर है'

(नन्दिवर्धन चिन्तामग्न·····अन्धेरा)

पार्श्व-स्वर : अन्तर की कल्पना यथार्थ बन छा गयी
त्रिशला की कामना मन में समा गयी।

[कालपुरुष का प्रवेश, नृत्य-अभिनय]

कालचक्र वर्ष, मास, दिन, पल कर बीत गया
माँ की मन-वीणा का निष्फल संगीत गया
सिद्धार्थ-स्वप्न घनीभूत उमड़-उमड़ रीत गया
आत्मा के यात्री का अविचल प्रण जीत गया
त्रिशला-सिद्धार्थ पार्श्वप्रभु के थे अनुयायी
ममता पर संयम कर, समता अपनायी

शान्त-भाव धार, हुए पर-भव के शिव-कामी
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

(अन्तराल-सूचक वाद्य-ध्वनि)

पार्श्व-स्वर : जनक और जननी ने किया जब स्वर्ग-गमन
शोक-तप्त मन से राज्य-आरोहित नन्दिवर्धन

(राजा नन्दिवर्धन का प्रवेश)

नन्दिवर्धन : जीता हूँ जीवन ज्यों स्वप्नों की माया
बीते दो वर्षों की रीती-सी छाया
निस्पृह वर्धमान सदा नैनों में बसता है
उसे कोई मोहपाश कभी नहीं कसता है
विवाह-अविवाह का भेद वहाँ सारहीन
आत्मा जहाँ काया के भोगों से भारहीन।

(प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : महावीर चिन्तन-रत करते एकान्त वास
अल्प शब्द, अल्प वस्त्र, अल्प नींद, अल्प ग्रास

(उक्त स्वरों के साथ ही महावीर के प्रतीक रूप भा-मण्डल अथवा भगवान की छाया प्रतिबिम्बित)

स्वर दिये सुनाई ज्यों बोधते लौकान्त देव
या कि गूँजते थे आत्म-चिन्तन स्वर स्वयमेव।

[लौकान्तिक देवों का श्वेत वस्त्रों और फूलों से सज्जित 'साधु और देव' दोनों की सी वेष-भूषा में गाते हुए मंच पर प्रवेश]

(रवीन्द्र संगीत)

लौकान्तिक देव : हिंसा-उन्मत्त पृथ्वी नित्य निठुर द्वन्द्व
घोर कुटिल पन्थ और लोभ-जटिल बन्ध
तेरे नव-जन्म को कातर सब प्राणी
करो त्राण महाप्राण, लाओ अमृत-वाणी
विकसित करो प्रेम-पद्म चिर मधु-निष्यन्द
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त-पुण्य!
करुणाघन! धरिणी-तल करो कलंक-शून्य।
लोक-लोक भूलें शोक, खंडन करो मोह
उज्जवल हो ज्ञान-सूर्य उदय-समारोह
प्राण पाये सकल भुवन, नयन पाये अन्ध
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त-पुण्य!
करुणाधन! धरणीतल करो कलंक-शून्य।
क्रन्दन मय निखिल हृदय, ताप-दहन दीप्त
विषय-विष-विकार-जीर्ण खिन्न अपरितृप्त

देश-देश रचित-तिलक रक्त कलुष ग्लानि
तव मंगल शंख ध्वनित, तव दक्षिण-पाणि !
तव शुभ संगीत-राग, तव सुन्दर छन्द ।
आओ दानवीर, देओ त्याग कठिन दीक्षा
महाभिक्षु ले लो सब की अहंकार भिक्षा
तव शुभ संगीत राग, तव सुन्दर छन्द
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त-पुण्य !
करुणाघन ! धरणी-तल करो कलंक-शून्य ।

[गायन समाप्त]

लौकान्तिक देवों के स्वर :

"जय जय नंदा ! जय जय भंता !
जय जय खत्तिय-वरद सभा बुज्झहि भगवन् !"
हे क्षत्रिय-वर वृषभ ! आपकी जय हो ।
आप दीक्षा ग्रहण करें ।

पार्श्व-स्वर : वर्धमान का स्वयं-बोध ही लौकान्तिक देवों का स्वर
ध्वनित हुआ अन्तर्निनाद उद्भासित रूप प्रखर
मन में ठाना महाभिनिष्क्रमण
छोड़े स्वजन, और पुर-परिजन ।
तृण-सम वैभव त्याग पलों में
वरा तपस्या का साधन
पहुँचे निर्जन ज्ञातृखण्ड में
आत्म-रश्मियाँ रथ-वाहन ।
पंचमुष्टि से किया सघन कुन्तल केशों का लुंचन
जैसे वे परिधान-सूत्र अव्यक्त रेशमी बन्धन

महावीर स्वर (पार्श्व से, गूंज) :
बारस वासाइं वोसट्ठ काए चियत्त देहे जे केई उवसग्गा
समुप्पज्जन्ति, तं जहा, दिव्वा वा, माणुस्सा वा,
तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पणे, समाणे
सम्मं सहिस्सामि, खमिस्सामि, अहियाससामि ।

पार्श्व-स्वर : बारह वर्ष तक जब तक मुझे केवल ज्ञान नहीं होगा, मैं शरीर की सेवा-सुश्रुषा नहीं करूँगा । देव, मनुष्य या तिर्यंच की ओर से जो भी उपसर्ग आयेंगे, मैं उनको समभाव से सहन करूँगा, और मन में किंचित् मात्र उद्वेग न आने दूँगा ।

तप

छटवां दृश्य

(पार्श्व स्वर)

वे हुए प्रकृति संग एक आत्म, थी देह चेतना-रूप धाम।
तन मन का संयम सहज साध, झेली ऋतुगत आपद अबाध।

[श्रावकों की दो मंडलियां अलग-अलग धुनों पर बारहमासा-स्वर में गाती आती-जाती]

(गायन)

वे ग्रीषमऋतु परवत मंझार, नित करत अतापन योगसार।
वे तृषा परीषह करत जेर, बहुरंच चलत नहिं मन-सुमेर।

(धुन परिवर्तन)

जेठ तपे रवि आकरो सूखे सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं दाझैं नगन शरीर।

(धुन-परिवर्तन)

वे वर्षा-ऋतु में वृक्ष तीर, तहँ अति शीतल झेलत समीर।

(धुन-परिवर्तन)

पावस रैन डरावनी बरसैं जलधर धार।
तरु-तल निवसैं तब यती बाजैं झंझा ब्यार॥

(धुन-परिवर्तन)

वे शीत-काल चौपट मंझार, कै नदी-सरोवर तट विचार।
वे निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं मटकत रोम कोय॥

(धुन-परिवर्तन)

शीत पड़े कपि-मद गले, दाहे सब वनराय।
ताल-तरंगिनी के तटे, ठाड़े ध्यान लगाय॥

(धुन-परिवर्तन)

वे मृतकासन वज्रासनीय, गोदूहन इत्यादिक गनीय।
वे आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहित ममता निवार।।

(धुन-परिवर्तन)

रंगमहल में पोढ़ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पच्छिम निशि भूमि में सोवैं संवरि काय।।
गज चढ़ि चलते गरव सों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालें करुणा अंग।।

(वाद्य-धुन पर ग्रीष्म, शीत, वर्षा, आँधी, बिजली आदि के दुर्धर रूपों का नृत्य—अन्त में शान्त)

पार्श्व-स्वर : (गायन) इहि विधि दुर्द्धर तप तपें तीनों काल मंझार।
लागे सहज सरूप सों, तन से ममत निवार।।

पार्श्व-स्वर : विचरे प्रभु घाटियों, गुफाओं
पर्वत के शिखरों पर,
नगर-वीथियों निर्जन मरु वन-प्रान्तर
निर्भीक और दिगम्बर
ध्यान-रत होते रात्रि-दिवस
अचल, मौन, निराहार।
वे जब विचरते तो
पाँवों की चाप से वनस्पतियों,
कृमि-कीटों के प्राणों को बचाते
मन वचन-काय से संयम को साधते।
जंगली प्रदेश के प्रान्तरों में पहुँच कर
ध्यान-मग्न बैठते, मौन और पलक-मूँद।
वन-वासी क्रूर-जन लकड़ी से ठेलते, करते थे ठट्ठा
होते आनन्दित अनाचार करके।

(आसामी जंगली कबीलों की लोकधुन पर वनवासियों का बीभत्स नृत्य, कुत्तों की भौंक)

पार्श्व-स्वर : (गायन) (धुन जोगी रासा)

प्रभु मुद्रा शान्त गम्भीरा
नयनों में करुणा नीरा
पाहन से फूटे झरने
प्रतिबिम्बित कोमल सपने

तरु, समता के हरियाये
निर्भय मानव हरषाये
जन-जन मन उर्वर विहँसा
अंकुराया बीज अहिंसा।

(उक्त गायन स्वरों के साथ-साथ जंगली मानवों का समूह बीभत्स नृत्य करते-करते शान्त हो नमन करता चला जाता है।)

पार्श्व-स्वर : आते चोर डाकू
भयंकर लड़ाकू
निरखते एक टक अनोखे जीव को
कि जिसके तन से लिपटी धूल, लताएँ, घास अनेकों।

(दो डाकुओं का प्रवेश)

पहला डाकू : अरे लो मिल गया, यह छद्मवेशी गुप्तचर
सधाऊँ आज अपने लोह-से, दो हाथ इस पर।

दूसरा डाकू : पकड़ यह रज्जु, इसको बाँध ले कस कर
खड़ा क्या देखता ? कर काम अपना ध्यान देकर।

पहला डाकू : ध्यान तो है, हो गये पर सुन्न कर कैसे !
हो गया कीलित, कि कोई रोकता जैसे
यह रस्सी हाथ से फिसली
बटों की सलवटें निकलीं
बिखर परमाणु कण छोटे
लिपट कर धूल में लोटे

दूसरा डाकू : ये कैसा कर दिया जादू, मैं कैसे हो गया बेबस
मुझे ज्यों नाग मेरे ही कलेजे का गया डस ?
पछाड़ें खा रही उत्ताल मेरे रक्त की धारा
कि जैसे सिर पटक कर ढूंढती अपना किनारा।

पहला डाकू : ये तो निरपेक्ष मौन अविचल
तन से झर रहीं किरन उज्ज्वल

दूसरा डाकू : नेत्रों से बरसी करुणाभा
बिखरी होठों पर अरुणाभा

दोनों डाकू : हे महातपस्वी ! निर्विकार !
शत-शत चरणों में नमस्कार

(नमस्कार करते चरणों में माथा रगड़ते नृत्य-अभिनय)

पार्श्व-स्वर : आते अघोरी तापस
नर-बलि के अभ्यासी

(दो तांत्रिकों का प्रवेश)

देखते सुगठित नग्न देह, निपट क्रियाहीन
होते प्रसन्न, करते अट्टहास
फेंकते उन्मत्त हो अनगढ़ मंत्र-पाश।

(मन्त्र पढ़कर अट्टहास करते हैं। तांत्रिक क्रिया, नृत्य में)

प्रभावित हो निरखते वे प्रभु की शान्त मुद्रा,
तनिक विचलित न आकुल, वह निरी संचेत निद्रा।

(छन्द परिवर्तन)

नर-बलि के इच्छुक तापस हो जाते हतप्रभ,
झुक जाते प्रभु चरणों में हो मंत्र-मुग्ध नर सब

(तापस तांत्रिकों का शान्त गम्भीर होकर जाना)

पार्श्व-स्वर : बीते वर्ष पर वर्ष
प्रकृति, पशु, मानव से विविध साक्षात् भोगते
आत्मा के स्वभाव को ध्यान-मग्न सोचते,
जग के पदार्थों के बदलते स्वरूप को
अलग-अलग मानवों की भिन्न चित्तवृत्ति को
भावनाओं के अन्तर को
संस्कारों और व्यवहारों की विविधता के बीच
पाते दृष्टियों के संगम का अनेकान्त सूत्र।
शुद्ध ज्ञान के सरोवर में
खिल उठता जीवों की करुणा का कमल
सुवासित कर जाता उर को ज्ञान का पराग
दर्शन भेद-विज्ञान का, बोध जाता मन को
किस प्रकार बाँधता है आत्मा के निज को
जड़ की ममता का दृष्टि-राग।

(कालपुरुष और कथावाचिका का प्रवेश एवं नृत्य अभिनय)

शुद्ध ज्ञानमय दर्पण में जब उदित हो रहे तथ्य।
उन्हें समन्वित कर मानव-हित, देना था उपयोगी अर्थ॥
कर विहार वह नगर गांव में, लेते अनिमित बना आहार।
सध जाती भोजन विधि, यदि हो अमुक परिस्थिति, अमुक प्रकार॥

इसी प्रकार
करते विहार
पहुँचे कौशाम्बी
वर्धमान।
एक[1] ओर कौशाम्बी में थी व्याप्त भक्ति-धारा।
और दूसरी ओर बरसता था विष अंगारा॥
कौशाम्बी-नृप शतानीक की राज्य लालसा भड़की।
अंग देश के दधिवाहन पर बिजली बन तड़की॥
चम्पापुरी ध्वंस कर डाली, अंतःपुर लूटे।
क्रूर काक सेनापति के दल-बादल थे टूटे॥
प्रतिशोधी ज्वाला की आहुति बनी धारिणी रानी।
'वसुमति' राजकुमारी की क्षत-विक्षत भाग्य-कहानी॥
वही बन्दिनी विवश 'चन्दना' चरम वेदना कोमल तन में।
वर्धमान ने इधर कठिन प्रण भोजन का था ठाना मन में॥
उपजा एक विशेष अभिग्रह मन में, जन-हित से संयोजित।
पाँच मास पच्चीस दिनों तक, हुआ न पूरा कल्पित॥
कौशाम्बी के ज्योतिषियों ने, गणना-मति से किया विचार।
समाधान पर प्राप्त हुआ नहिं, किस विधि लेंगे प्रभु आहार॥
स्तब्ध-मना सब नगरी-नागर, चिन्ता राज-भवन छायी।
प्रभु-अनुगामिनी मृगावती रानी अन्तर से अकुलायी॥

(भगवान महावीर के अनाहार से महाराज शतानीक, रानी मृगावती और कौशाम्बी के नर-नारियों की आकुलता)

नर-नारी स्वर : निराहार हैं प्रभू, अभिग्रह क्या है, हम कैसे जानें।
आत्मा के तल-पट पर चित्रित, ताने-बाने वे जानें॥

एक नारी स्वर : स्वर्ण थाल में नाना व्यंजन, द्वार-देहरी से सट के।
मैं तो लेकर खड़ी कटोरे में विशुद्ध पायस भर के॥

पति-पत्नी : हम पति-पत्नी मनोयोग से शुद्ध नीर लाये भरकर।
कांस-कलश को कर में थामे, नारिकेल धारे उस पर॥

एक नारी : मेरे पग में स्वर्ण घूँघरू, चुनरी पर स्वस्तिक के चिह्न।
केशर, मिश्री रजत-थाल में, मेरी मुद्रा प्रमुदित भिन्न॥

एक पार्श्व-स्वर : तिष्ठो प्रभु! निर्मल जल आहार,
आओ भगवन्, लूं पद-पखार।

---

१. चन्दना-प्रसंग—एक कथानक के आधार पर।

दूसरा : हो जाऊँ धन्य, प्रभु रुकें द्वार,
भव-सागर से लेंगे उबार।

तीसरा : भोजन यदि ले लें प्रभु उदार,
सुषमित करुणा से लें निहार !

एक साथ बहुत से स्वर (एक के बाद एक) :
क्यों निराहार ? प्रभु निराहार ?
क्या जतन करें ?
क्या लगन करें ?
कैसे हो पूर्ण अभिग्रह ?
क्या है काल-लब्धि का आग्रह ?

पार्श्व स्वर : अकस्मात् गूंजा जय-ध्वनि से कौशाम्बी का जन-पथ।
जहाँ रुका था दास-हाट से आकर सेठ धनावह का रथ।

[सारे नागरिक अत्यन्त व्याकुल हैं, कि अचानक स्वर गूंजते हैं।]

सामूहिक स्वर : जय सती चन्दना
जय सती चन्दना
कोदों के दानों से सध गया आहार
दासी के हाथों, प्रभु ने लिया आहार
जय जय जयकार—प्रभु की जय जय जयकार
जय सती चन्दना जय जय जयकार
जय प्रभु वर्धमान जय जय जयकार

एक स्वर (घोषणा) :
"आहार अभिग्रह—तप का आग्रह"

पार्श्व-स्वर : **(जैसे भगवान की अंतरात्मा की गूंज)**
राजकुमारी के कर कोदों, पाँवों बेड़ी, दासी वेश।
देहरी के अन्दर बाहर हो, हँसती-रोती हो बिन केश।

[दासी वेश में चंदना का प्रवेश। पैरों में बेड़ी, मुंडा हुआ सिर, आँखों में आँसू, होठों पर मुस्कान, हाथ में सूप। वह घिरी हुई है नर-नारियों से, जो जय जयकार की ध्वनि करते प्रवेश करते हैं।]

नागरिक : देखो तो अद्भुत संयोग, रानी-दासी का क्या योग ?
(चन्दना अपनी कहानी कहती है। नृत्य-अभिनय)

चन्दना[1] : राजकुमारी वैशाली की, चन्दन मेरा नाम।
मदनोत्सव का संयोजन था मेरा अग्रिम काम।।

---

१. चन्दना-प्रसंग—दूसरे कथानक पर आधारित।

दिवा-स्वप्न में खोयी थी मैं, भावों के अतिरेक।
पा एकाकी, उड़ा ले गया, विद्याधर अविवेक॥
'मनोवेग' को हुई ग्लानि, पा मुझको चिन्तनशील।
छोड़ा उसने मुझको वन में, जहाँ जंगली भील॥
भीलराज को हुई भेंट मैं, बनूँ संगनी दासी।
मेरी आत्म-शक्ति से डर वे, रख न सके वनवासी॥
दासी बना बेच डाला इस कौशाम्बी के पथ पर।
सेठ धनावह दया भाव से ले आये रथ पर॥
पिता तुल्य थे सेठ, किन्तु मेरे केशों का नाग।
क्षण में विषमय बना गया, स्वामिनि का स्नेह-पराग॥
केश मुँडाये क्रोध-रोष में, पग डाली जंजीर।
अन्ध कोठरी में थे बन्दी, मैं और मेरी पीर॥
वर्धमान की कोमल करुणा सौम्य प्रखर मुद्रा।
मेरे उर पर अंकित हो, चित्राती आत्मिक तन्द्रा॥
उस आध्यात्मिक निद्रा में ही स्वप्न हुआ साकार।
शुद्ध चेतना में उद्भासित, वर्धमान-आहार॥
स्थिति-वश मुझे निकाला घर से सेठ धनावह ने लाचार।
गृह से बाहर-भीतर पग थे, नेत्रों में आँसू की धार॥
कोदों के कण लिये सूप में, पाँवों में बेड़ी का भार।
आँख उठाये थी, देखा क्या ? वीतराग प्रभु मेरे द्वार।
भव-भव के बन्धन कट गये,
क्षण में मुक्ति-द्वार खुल गये।

[राजा शतानीक और रानी मृगावती का प्रवेश]

मृगावती : हाय ! यह चन्दना मेरी बहिन ?
हाय ! यह दासी, यह सत्य है या स्वप्न !
तेरे ही हाथों से प्रभु का आहार
पूर्ण हुआ अभिग्रह, यह कैसा चमत्कार !
आज पड़ा मुझ पर, बन मेरी बहिन का कुठार
चन्दना ! राजमहल तेरे बिना जाऊँ नहीं
तेरी यह फूल-देह पाये विश्राम वहीं।

चन्दना : देह कहाँ फूल-पावन ? देह-धर्म त्याग जियूँ,
आत्म-धर्म विकसित कर, वीर-प्रभु-शरण गहूँ।
नारी अभिशप्त जहाँ, जीवन वहाँ अर्थहीन,
वीर-वचन मंत्र जपूँ, रहूँ सदा निजाधीन।

सामूहिक स्वर : जय जयकार—जय जयकार
खुले मुक्ति के मंगल द्वार
पीड़ित मानव का उद्धार
शापित नारी का उपकार
समता का संस्पर्श अपार
जय जय, हे प्रभु, जय जयकार

(सबका प्रस्थान)

केवलज्ञान

सातवाँ दृश्य

[कालपुरुष और कथावाचिका का प्रवेश, नृत्याभिनय]

पार्श्व-स्वर १ :
तपोवन के संयम को साधते, मानवता के हित, अभिग्रह ठानते
बारह वर्ष तक किया आरोहण तपस्या के पर्वत का।
तब योग के दुर्गम दिव्य शिखर पर
उद्भासित हुआ सूर्य केवलज्ञान का।
उजागर कर गया एक साथ उस सबको
जो था, जो है, और जो होगा।

पार्श्व-स्वर २ : संध्या का समय, ऋजुकूला नदी तीर
स्फटिक शिला पर विराजे थे महावीर।
एकात्म हो गये वे स्वयं की दीप्ति से
उजागर था सब जो जाना निज प्रतीति से।
अभिन्न एक-रूप जैसे दीपक की लौ और आलोक
ज्ञान की संचेतना में झलक उठे तीनों लोक।

दोनों स्वर : देवताओं ने की पुष्प वर्षा
मनुष्यों ने किया जय-जयकार
प्रतीक्षा हुई त्रैलोक्य में व्याप्त
कि ध्वनित होगा अनहद नाद का विस्तार।

पार्श्व से गायन : राजगृही नगरी में भगवान
पधारे, गूँजा जय जय गान
(नगर-नागरिकों का नृत्य करते प्रवेश)

खिला विपुलाचल पर मधुमास
फलवती होगी जग की आस

सुसज्जित समवसरण आगार
शान्ति-समता-आश्रय-साकार

○

गगनचुम्बी शुभ मानस्तम्भ
नमित जिसके पद में सब दम्भ

○

देव, नर, नृप, पशु जीव अपार
खुले सब के हित प्रभु के द्वार

○

मात्र दर्शन हरता दुख-शोक
आत्म-सुख से प्लावित चहुँ लोक

○

प्रश्न आकुल प्राणी के स्वयं
सुलझते प्रभु-दर्शन माध्यम

पार्श्व-स्वर : किन्तु एक अपूर्व घटना थी
जो आश्चर्य चकित करती
विस्मय से भरती
लाखों श्रोताओं के हृदय को मथती
कि क्यों नहीं प्रभु की वाणी शब्दों में झरती ?
दर्शनों से मिलता था असीम आनन्द
किन्तु उत्सुक थे मानव ,
कि मिलें, आचरण के छन्द

(नर-नारियों का प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : समाधान झलका इन्द्र ही के मानस में
'इन्द्र' जो मानव की असीम शक्ति का द्योतक
अथवा प्रकृति के गूढ़ मर्म, अदृश्य का संयोजक
प्रतीक चरम ऊर्जा का,
कल्पनातीत वैभव और सामर्थ्य असाध्य का

[इन्द्र का प्रवेश]

इन्द्र : वर्धमान, केवलज्ञान प्राप्त कर, तिष्ठित मौन
शब्दों के माध्यम से, गहन अनुभूति तत्त्व
जनता के मानस में,
पहुँचाये कैसे ? कौन ?
जिसमें हो, भाषा के प्रेषण की अद्‌भुत सामर्थ्य
लौकिक व्यवहार-दृष्टि, रसमय वर्चस्व,

मेधावी मानस-सित, आत्मजयी विद्या
ओजस्वी तर्क-बुद्धि, योग-सिद्ध निष्ठा
(एक पल को सोचकर जैसे समाधान हाथ आ गया)

इन्द्र : (प्रसन्न मुद्रा में)
इन्द्रभूति गौतम !
वेदों का ज्ञाता है, वाणी में सौम्य कुशल
जन-प्रिय, प्रकाण्ड पण्डित, शब्द-धनी, वाग्-विपुल
भेजूँ उसे प्रेरणा-वश, भगवान के समवसरण
मानस्तम्भ-दर्शन से, विगलित हों दम्भी प्रण
पहुँचे प्रभु के समीप, संभ्रम से पाये मुक्ति
ग्रन्थियाँ प्रकाण्डता की, सुलझ बनें सरल सूक्ति

(इन्द्र का प्रस्थान)

[इन्द्रभूति गौतम का प्रवेश]

इन्द्रभूति (स्वगत) : यह राजगृही नगरी अद्भुत
कण कण में चमक रही विद्युत् !
इस रजत-ज्योति का ध्रुव प्रपात
उमगाता उर, रोमांच गात
(छन्द परिवर्तन)
मेरे मन की शंका मूल
इस भू पर होगी निर्मूल

[वायुभूति, अग्निभूति और दो शिष्यों का प्रवेश। वे सब इन्द्रभूति को प्रणाम करते हैं]

इन्द्रभूति : हे वायुभूति ! हे अग्निभूति !
हो रहा यज्ञ का शुभ मुहूर्त
सोमिल के इस अनुष्ठान में
पहुँचूँगा मैं कुछ समय बाद
पहले देखूँ ज्योति-किरण के
पथ में प्रस्तुत, क्या आह्लाद !

(इन्द्रभूति को छोड़ सबका प्रस्थान)

इन्द्रभूति : आया था एक विज्ञ विप्रवर आश्रम में
पूछता था मर्म अर्थ, निहित गूढ़ छन्द में
"त्रैकाल्यं, द्रव्यषटकं, नव-पद-सहितं,
जीवषटकायलेश्या: । पंचान्ये चास्तिकाया

व्रत-समिति-गतिर्ज्ञान-चारित्र-भेदाः।"
ऐसा गम्भीर वाक्य पढ़ा था, न गुना था
अर्थ क्या बताता ?
निज दम्भ जो तना था
चुभ रहा है वाक्य जैसे मर्म में विंधा हो बान,
"अर्थ दे सकें बस तत्त्व-ज्ञानी वर्धमान"

[जनसमूह का प्रवेश गाते-नाचते, झाँझ बजाते आते हैं और इन्द्रभूति के सामने से गुजर जाते हैं]

जनसमूह : चलो रे भइया दर्शन को महावीर के
माँगो रे भइया वाणी का अमृत-नीर रे
(गाते गाते स्वर तीव्र—चरण-गति में हर्ष-उन्माद)

इन्द्रभूति : है यहीं वीर का समवसरण ?
क्या जनता जाती वहीं उमड़ ?
यह क्या अनुभव, इन्द्रियातीत !
मेरी पग-ध्वनि में वही गीत
(इन्द्रभूति के चरण जनसमूह की चरण-ध्वनि में मिलकर स्वयं उसी दिशा में चल पड़ते हैं—प्रस्थान)

[इन्द्रभूति उसी गति में चलते चलते पुनः प्रवेश करते हैं—मानस्तम्भ के सम्मुख दोनों ओर से जनसमूह का प्रवेश]

[इन्द्रभूति को इंगित करता]

एक ओर का जनसमूह :
ये गौतम आज पधारे क्यों ?
ये धरा गगन हैं स्तंभित क्यों ?

दूसरी ओर का जन समूह :
ये गौतम, यज्ञ-विधान कुशल
यदि वाद-विवाद करें इस पल

दोनों ओर की जनता : (एक साथ)
तब रह न सकेंगे 'वीर' मौन
(शून्य की ओर देखती—वर्धमान को सम्बोधित करती गाती हुई)
प्रभु अमृत-वाणी बरसाओ
जन-जन का मानस सरसाओ
(उक्त दोनों पंक्तियों को दोहराते-दोहराते जनता के स्वर धीमे—शान्त)

[स्तब्ध शान्त वातावरण। स्थिर मुद्रा में इन्द्रभूति व जन-समूह]

महावीर-वाणी : (गूँज में)
इन्द्रभूति गौतम ! तुम आ गये भन्ते !

इन्द्रभूति : (चौंककर)
हाँ, आ गया। स्वीकार हो प्रणाम, दुख-हन्ते !

जनता : (हर्षित हो)
जय गुरु गौतम, जय महावीर
मेघ-ध्वनि वाणी त्राणदायी नीर।

इन्द्रभूति : (स्वगत)
नाम कैसे जान गये ? अद्‌भुत सामर्थ्य !
पर विख्यात मैं इतना कि,
न जानते तो होता आश्चर्य।

(पुनः वातावरण शान्त)

महावीर-वाणी (गूँज)
गौतम ! तुम्हें शंका, अजीव-जीव तत्त्व की
आत्मा की सत्ता, ध्रौव्य, व्यय रूप अर्थ की

इन्द्रभूति (स्वगत) : शंका अन्तर्मन में मेरे, प्रभु ने कैसे झाँका
सूक्ष्म बिन्दु मेरे मंथन का, किस प्रकार आँका ?
(प्रकट में)
हे महावीर ! हैं धन्य आप, पढ़ ली मेरी उर-आशंका
(अत्यन्त विनीत स्वर)
अब कृपा करें, दें समाधान, मानस-तरणी को पार लँघा।

जनता की हर्ष-ध्वनि :
धन्य गुरु गौतम, हे धन्य महावीर !
भंवरों से नाव तिरी, पहुँच रही तीर

महावीर वाणी : (गूँज) जीवात्मा का अस्तित्व ध्रौव्य
इन्द्रियातीत बन, परख सौम्य !

इन्द्रभूति : (अति विनीत स्वर)
कैसे अति-ऐन्द्रिक शक्ति वरूँ ?
निज आत्मा का साक्षात् करूँ ?
(नमित मुद्रा में)
जीवन-पथ भास्कर ! अनियारे !
कण कण अंतर के उजियारे !

हे वीतराग ! सर्वज्ञ देव !
हूँ शरणागत तुम चरण-सेव

पार्श्व-स्वर : वेदविद् विप्र यज्ञ कामी
धुरन्धर इन्द्रभूति नामी
हुए प्रभु के पद अनुगामी
मुख्य गणधर गौतम स्वामी
वीर प्रभु के तात्त्विक उपदेश
बने गौतम-मुख सरल संदेश।

(इन्द्रभूति—भगवान के गणधर का आसन ग्रहण करते हैं)

पार्श्व-स्वर सामूहिक तथा मंच से जनता के स्वर :

(पूजा-ध्वनि)

वीर-हिमाचल तैं निकसी,
गुरु गौतम के मुखकुंड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली,
जग की जड़ता सब दूर करी है॥

(गाते एवं गौतम को प्रणाम करते हुए जनता का प्रस्थान
अन्त में गौतम का प्रस्थान)

(अन्तराल द्योतक वाद्यध्वनि)

[वाद्य-ध्वनि पर जनता का प्रवेश। राजा श्रेणिक, महारानी चेलना, चन्दना, राजकुमार अभय, मेघकुमार आदि का प्रवेश। वे भगवान की उपदेश सभा में आये हैं। गौतम गणधर द्वारा भगवान की वाणी सुनने की प्रतीक्षा में हैं। गौतम का प्रवेश। वे गणधर का आसन ग्रहण करते हैं]

गौतम : भगवान के मनन को चित्त में उतारा है
अन्तर और बाहर, उजियारा-उजियारा है
श्रेणिक महाराज ! रानी चेलना ! सब जन सुनें
सारभूत सात तत्त्वों का मनन करें
सात तत्त्व ये हैं—
जीव, है आत्मा या चेतन
पुद्गल है **अजीव** जड़, जो लेता आकार
दोनों का मिलना है जीवन,
जो कर्मों के **आस्रव** का द्वार।

आस्रव के द्वार से प्रवाहित जो कर्म,
आत्मा को कसता, है कहलाता **बन्ध**
संयम यदि साधे, यह कर्मों का रुकना,
है **संवर** निर्द्वन्द।
बन्ध को काटना भी व्यक्ति की क्षमता है
घटते जब पूर्व कर्म, होती है **निर्जरा**
तप से जब प्राणी के कटते सब कर्म-बन्ध
मोक्ष है वही, चिदानन्द वही स्वच्छन्द।

श्रेणिक : नमित है श्रेणिक यह चरणों में गणधर के
भंते ! क्या मार्ग इस मोक्ष-सुख प्राप्ति का ?

गौतम : उक्त सात तत्त्वों पर सच्चा श्रद्धान,
नींव मोक्ष-स्थान की।
आत्मा और पुद्गल के भेद का विशुद्ध भान
बाट मोक्षज्ञान की।
सच्चे ज्ञान, दर्शन युक्त आचरण का विधान
प्राप्ति मोक्ष-यान की।
आचरण की युक्तियों के बीज-मंत्र राजन् !
ध्वनित वीर-वाणी में, मेघ-छन्द गर्जन।

महावीर-वाणी (गूंज में) : सव्वे पाणा ण हंतव्वा।

गौतम : किसी प्राणी को आहत मत करो।

गूंज : सव्वे पाणा ण अज्जावेयव्वा।

गौतम : किसी प्राणी को पराधीन मत करो।

गूंज : सव्वे पाणा ण उद्दवेयव्वा।

गौतम : किसी प्राणी के प्राणों का वियोजन मत करो।

गूंज : कोहो ण सेवियव्वो।

गौतम : क्रोध का सेवन मत करो।

गूंज : लोभो ण सेवियव्वो।

गौतम : लोभ का सेवन मत करो।

गूंज : न भाइयव्वं।

गौतम : भय मत करो।

गूंज : ण मुसं बूया।

गौतम : असत्य मत बोलो।

गूंज : बंभचेरं चरियव्वं।

गौतम : ब्रह्मचर्य का आचरण करो।

गूंज : अदिण्णं पि य णातिए।

गौतम : बिना दिया मत लो।

गूंज : अप्पणो गिद्धिमुद्धरे।

गौतम : आसक्ति को छोड़ो, संग्रह मत करो।

गूंज : साहरे हत्थपाए य, मणं सव्विंदियाणि य।

गौतम : हाथ, पैर, मन और इन्द्रियों का अपने आप में समाहार करो।

पार्श्व-स्वर : वाणी की गंगा में स्नान कर प्रफुल्लित
दीक्षित हुए राजा प्रजा, मानव मुक्ति के निमित्त।

हर्ष-ध्वनि : धन्य···धन्य···धन्य···कृतार्थ हुए, प्रभु !

रानी चेलना : चेलना नमित प्रभु ! वीतराग-चरण में
क्या राजरानी दीक्षित हो, रह सकती शरण में ?

रानी मृगावती : मृगावती, नमित श्री-चरण में
निराकुलता का पाठ पढ़ूं, लें प्रभु, शरण में।

चन्दना : वीर-प्रभु ! दीक्षित तो सदा से, मैं मन से
चन्दना की वन्दना, स्वीकार करें शरण में।

गौतम : प्राणी मात्र, समता, स्वतन्त्रता, सुख खोजता
नारी का गौरव, स्वयं मुखरित हो बोलता
नारी हो दीक्षित, यह प्रभु का आदेश है
पुरुष की समान-धर्मा, क्षमता में विशेष है।

मेघ और अभय : राजपुत्र अभय और मेघ का प्रणाम लें
मुक्ति हेतु श्रमण-धर्म दीक्षा का मन्त्र दें।

गूंज : 'तथास्तु' 'तथास्तु' 'तथास्तु'
(चेलना, मृगावती, चन्दना, अभय, मेघ दीक्षा लेने की मुद्रा में)

श्लोकपाठ :
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—
अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि···

(सब का प्रस्थान)

पार्श्व-स्वर : निरक्षर वाणी सब दिशि व्याप्त
हृदय-तल छू हरती संताप
मागधी, अर्धमागधी वचन
लोक-भाषा में ही श्रुत-मनन
विविध प्रान्तों में धर्म-विहार
सम्मिलित जन-समुदाय अपार।
कच्छ, कुरु, कोशल, काशी, अंग,
मल्ल, पंचाल, आदि मरु, वंग,
मलय, किष्किन्धा और विदर्भ,
वीर के धर्म-चक्र अनुवर्त्त।

प्रतिबिम्ब और अनुगूँज

आठवाँ दृश्य

एक स्वर : मनुष्य क्यों आकुल और त्रस्त होते जीवन में ?
दुःखों के मूल कारण हटें युग-युगान्तर में
कैसे सुलझायेगा गुत्थियाँ, विकासोन्मुख सभ्यता की,
मानव भविष्य का ?
स्पष्ट ज्ञान-दर्शन में समाहित कर तीन काल
आचरण का पंथ और चिन्तन की दिशा को—
प्रशस्त करते भगवान
अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह का सूक्ष्म बोध देते।

दूसरा स्वर (घोषणा का सा) :
मानव की प्रवृत्तियाँ जब हो उठीं अमानुषी
हिंसा की लपटों में लिपटी थी वैशाली।

(युद्ध-सूचक संगीत)

युद्ध की विभीषिका ताण्डव-नृत्य कर उठी
आक्रमण-कर्ता था मगधराज कुणिक—
मगध का शासक, पुत्र श्रेणिक बिम्बसार का,
दुर्मद दौहित्र स्वयं चेटक महाराज का,
रानी चेलना की जो कोख का था जाया।
स्वयं वृद्ध चेटक को होना पड़ा युद्ध-रत
नाना के ध्वंस को जब कुणिक हुआ उद्यत
साथ लेकर भाईयों को, टूट पड़ा भाईयों पर
अस्त्र शिलाकंटक, वीभत्स शस्त्र रथ-मुसल

(युद्ध-दृश्य—राजा चेटक और कूणिक व अन्य योद्धा संग्राम-भूमि में। भयानक चीत्कार आदि ध्वनियाँ। अन्त में सारे पात्र स्थिर मुद्रा में)

[एक उन्मत्त पुरुष का प्रवेश। पागल का सा नृत्य-अभिनय]

पार्श्व-स्वर (एक) :

हिरोशिमा की चीत्कारें तड़पातीं कलपातीं

(बम फटने, वायुयानों के उड़ने की आवाजें)

दूसरा स्वर : आकाश जल उठा—थल फट उठा
पानी में आग लगी
वायु थरथरा उठी।

तीसरा स्वर : टैंक भिड़े अट्टहास
बम, धम, धम, सत्यानाश।

चौथा स्वर : सभ्यता का खूब सूर्य चमका—हा-हा-हा
चाँद पर मनुष्य जा धमका—हा-हा-हा

सारे स्वर : चेटक और कुणिक; नाना-दौहित्र लड़े
अमेरिका वियतनाम शत्रु-मित्र अड़े खड़े

(चीत्कारों की आवाज—'हाय' 'हाय' के स्वर)

पार्श्व स्वर : हृदयों में छिपे राग फूटते अनार से
रक्त-बिन्दु उड़ चले फुलझड़ी चिंगार से
हिंसा का खिला पराग उजड़े लाखों सुहाग
हिंसा की प्रवृत्ति सदा होती है विकराल
पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, या हो वर्तमान काल
लगता है जैसे हो दृश्य वही ध्वंसकर
पात्र भिन्न, समय भिन्न, गूँजते हैं वही स्वर।

(बम फटना, वायुयानों का आकाश में उड़ना, टैंकों की धड़धड़ाहट आदि का शोर, वर्तमानकाल के युद्ध का आभास)

[अमरीकी, जापानी, वियतनामी आदि सैनिकों की वेशभूषा में पात्रों का प्रवेश, युद्ध-मुद्रा में]

पार्श्व-स्वर : कुणिक का हलमूसल; इस युग के टैंक-सम
उसका शस्त्र शिलाकंटक, अमरीकी ऐटम बम

(विस्फोटों की ध्वंसकारी आवाजें—चीत्कार बालक-बालिकाओं का)

घोषणा के स्वर : क्षण में अमेरिका ने फेंक दिया ऐटम बम
शत्रु जापान ध्वस्त पल में हुआ प्रलय-ग्रस्त
चीत्कारें हिरोशिमा की, विनाश नागासाकी का,

वियतनामी युद्ध का एक पूरा-पूरा युग
तड़पाता मानव को विकल, भयभीत त्रस्त।

दूसरा स्वर : चन्द्रमा की धरती पर चरण उतार दिये
ग्रह-नक्षत्रों की उड़ानों के अभियान
किन्तु हाय, मानव ! धरती के मानव को
दे न सका त्राण, प्राण-रक्षा का आत्मदान !
एक ओर आकुलता, दुःख और पीड़ा की चरम सीमा
दूसरी ओर मित्रता का स्वांग और संस्कृति की भंगिमा।

(सारे पात्र अलग-अलग मुद्रा में स्थिर)

दोनों स्वर : सुनो एक बार फिर वही महावीर-मंत्र
रक्षा का कवच और करुणा का महामंत्र।

(शान्त वातावरण ...... स्तब्ध)

महावीर वाणी (गूंज में) :
जीववहो अप्पवहो, जीव दया अप्पणो दया होई

गौतम : किसी भी प्राणी का वध करना अपना वध करना है।
दूसरे पर दया करना, अपने को सुखी करना है।

गूंज : आरंभजं दुक्खमिणं

गौतम : सभी दुःख हिंसा से उत्पन्न होते हैं।

गूंज : सव्वे सिं जीवियं पियं

गौतम : सभी को अपना जीवन प्रिय होता है।

गूंज : आय तुले पयासु

गौतम : सभी प्राणियों को अपने समान समझो।

गूंज : मुञ्चेज्ज कमाई सव्व दुक्खाणं

गौतम : प्राणियों के वध का अनुमोदन करने वाला मनुष्य कभी भी दुःखों से नहीं छूट सकता।

गूंज : से हु पन्नाण मंते बुद्धे आरंभो वरए

गौतम : जो हिंसा की प्रवृत्तियों से विलग है, वही बुद्ध, ज्ञानी है।

○

निर्भय हो जीवन, निराकुल हों जगत्प्राण,
अहिंसा हो मन में, सधे वचन-तन से, तो
दुःखों और कष्टों से मिल जाये पूर्ण त्राण।
(पात्रों की स्थिर मुद्रा में परिवर्तन—करुणा, दया-क्षमा के भाव मुख पर)

सामूहिक गान

पार्श्वस्वर : हिंसा-उन्मत्त पृथ्वी, नित्य निठुर द्वन्द्व
घोर कुटिल पंथ उसका लोभ जटिल बन्ध
तेरे नव जन्म को कातर सब प्राणी
करो त्राण महाप्राण, दो अमृतवाणी,
विकसित करो प्रेम-पद्म, चिर मधु-निष्यन्द।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य !
करुणाधन ! धरणीतल करो कलंक-शून्य।
(सबका प्रस्थान अन्तराल सूचक वाद्य-यंत्र)

दृश्य-परिवर्तन

[एक ओर से श्रमण तथा वैदिक मतों के अनुयायी गुरु-शिष्यों का प्रवेश। वे अपनी परम्परागत ध्वजाएँ थामे हैं। ध्वजाओं पर मत-प्रवर्तक गुरुओं के नाम लिखे हैं। ये नाम हैं—श्वेतकेतु, उद्दालक, अजितकेश कम्बली, पूरण कश्यप, प्रकुद्ध कात्यायन, मंखलि गोशाल और श्रमणकुमार केशी। दूसरी ओर से आधुनिक युग के विविध राजनीतिवाद-नायकों का प्रवेश अपने अनुगामियों के साथ अपनी-अपनी ध्वजाएँ थामे। एक ही मार्चिंग वाद्य-धुन पर दोनों ओर से दलों का प्रवेश। भाव ऐसे हैं जैसे अपने-अपने दल में तर्क कर रहे हों, झगड़ रहे हों, अपना-अपना मत जमा रहे हों। वाद्य-धुन द्वारा अतीत में धर्मवादियों का एवं वर्तमान में राजवादियों के वाद-विवाद का वातावरण]

पार्श्व-स्वर : (पात्रों के प्रवेश के साथ साथ)
विश्व में सत्ता के सत्य की खोज का प्रयत्न था प्रवाहित
दर्शन के क्षेत्र में क्रान्ति थी समाहित।
चीन में लाओत्से कनफ्यूशस/यूनान में पैथागोरस/
ईरान में जरथ्रुस्त/फिलस्तीन में हजरत मूसा/
भरत-खण्ड में वैदिक और श्रमणों का चिन्तन
निज निज के तर्क लिये दर्शन की स्पर्धा में वाग्-युद्ध रत थे।
भविष्य में राजनीति, मानव की होगी धुरी
वाग्-विद्या चतुर जन शीतयुद्ध जिह्वा से करेंगे
उबलेगी वाणी, भस्म होगा अणु अणु
विनसेगी धरा···
(वाद्य-धुनों में परिवर्तन—पात्रों की मुद्राओं में परिवर्तन)

पार्श्व-स्वर : महावीर स्वामी के ध्यान और चिन्तन में।
लोकहित मंथन से अनेकान्त झलका।
मान्यताएँ अलग अलग भिन्न भिन्न दृष्टियाँ
अनेकान्त समाहार सबका करेगा
ईर्षा और कलुषता मन की हरेगा।
सत्ता यदि तत्त्वों की, वस्तुओं-स्थितियों की
एक ही अपेक्षा से दूसरी को समझें
वाणी की भंगिमा का रहस्य यह जान जायें,
कोई तथ्य, कोई सत्य, एक साथ एक क्षण
कहा नहीं जा सकता पूरी समग्रता से
दूसरे की दृष्टि को समझें यदि सप्रयत्न
जगती का वाद-द्वन्द्व समन्वय में पुष्पित हो
जीवन का सहज रूप समरस में पुलकित हो।

(शान्त-स्तब्ध वातावरण)

महावीर वाणी (गूँज में) :
सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्त भंगं आदेस वसेण संभवदि ॥
सिय अत्थि, सिय णत्थि, सिय अव तव्वा।

गौतम : सत् अस्ति रूप से है, नास्ति रूप से है और अवक्तव्य है। प्रत्येक वक्तव्य सापेक्षता से है।

गूंज : एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान-नेत्रमिव गोपी ॥

गौतम : जिस तरह दही को मथ कर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, इसी तरह अनेकान्त पद्धति पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है, तो दूसरे को गौण कर देती है। उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती।

[दोनों दल जो उत्सुकता से उपर्युक्त वचन सुन रहे थे, उल्लास भरी वाद्य-धुन पर परस्पर मिलते हैं—प्रसन्न हो समन्वय नृत्य करते हैं।

(सबका प्रस्थान)

●●●

नौवाँ दृश्य

पार्श्वस्वर १ : मानस में प्राणियों के शान्ति-रस सरसाते
दुःख और दम्भ की समस्या सुलझाते
व्यक्ति-व्यक्ति के व्याकुल मानस को थाहते
स्थितियों के अनुकूल समाधान गाहते
व्यावहारिक और वैचारिक दृष्टियों पर आधारित
कर्म-सिद्धान्त को चित्तों में उतारते
जन-जन को स्नायु के तनावों से उभारते
भविष्य की घटनाओं की छाया दर्शाते
शताब्दियों के पार की अराजकता, अपराध
और आपाधापी की दुखद परिणतियों को
इंगित कर, निराकुल पंथ को दिखाते,
विचरते थे निस्पृह, वीतराग महाप्रभु।

दूसरा स्वर : हों यदि ये अमर स्वर गुञ्जरित जन-मन में
देंगे उन्हें शान्ति जो दिशा-भ्रष्ट भटकन में।

[एक ओर से आधुनिक युग की नारियों का प्रवेश। आधुनिकाओं में प्रौढ़, वृद्धा, युवती, बालिकाएँ]

नारियाँ : वेश-भूषा का प्रलोभन
रूप का शृंगार।
चाहिए नूतन हमें नित
प्रसाधन-आधार।
ईर्ष्या, स्पर्धा है जला रही हमको,
आकुल हैं, कैसे हम पहुँचेंगे शिखरों पर
ख्याति, सौन्दर्य और स्वेच्छा के कँगूरों पर
धकेल कर दूसरों को।

[आधुनिक पुरुषों के एक दल का प्रवेश]

पुरुष वर्ग : चारों ओर खुली है हाट-बाट भोग की
उठती हैं जीवन में लालसा—उमंगें

लूटें, खसोटें और भर लें तिजोरियों में
चमचमाती चाँदी
तकनीकी दुनिया हो
हुक्मों की बाँदी।

[आधुनिक पुरुषों के दूसरे दल का प्रवेश, इसमें सिनेमा-दलाल, डाक्टर, इंजीनियर, आर्टिस्ट सब हैं।]

सिनेमा-दलाल : चाहिए क्या सुन्दरि ! बनोगी फ़िल्म की हीरोइन ?

डाक्टर : दीजिएगा नब्ज़, गिनाइयेगा चौंसठ, बना दूँगा रूपवती।

इंजीनियर : कम्प्यूटर ले आऊँ ? छान डालूँ तरकीबें, पहुँचा दें आपको जो ख्याति के शिखरों पर।

आर्टिस्ट : 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कला का मन्त्र परम
सुन्दर का दर्शन है 'शिव की उपासना'
शिव की उपासना ही सत्य की आराधना।
सत्य की आराधना में किंचित् छुपाव नहीं
नग्नता, विरूपता, विद्रूपता सभी सही।

सारा पुरुष वर्ग : (एक साथ) ब्लैक ! ब्लैक ! ब्लैक !
यह लो। वह लो। सब लो !
भागो। मारो। लूटो। खाओ।
मौज ! मौज ! और मौज मनाओ।

सभी स्त्रियाँ : (एक साथ) मोटर कार, हवाई जहाज़।
पिक्चर, होटल, खाना-पीना।
मौज ! मौज ! मौज !

पुरुष व स्त्रियाँ : (एक साथ) पकड़ समेटा। रक्खो-रक्खो।
भरलो भरलो। ले-लो ले-लो।
यह भी मेरा। वह भी मेरा।
यह भी चाहूँ। वह भी चाहूँ।

नवयुवक-युवतियाँ : (अत्याधुनिक वेशभूषा में)
कुछ नहीं चाहिए, नहीं चाहिए—
यह भी छोड़ा—वह भी छोड़ा
धन की अति से तंग आ गये
नियमों में बँध जंग खा गये
हमें न अब कुछ माथापच्ची
मन की मौज संगिनी सच्ची

स्वेच्छा-रत निर्बन्ध युगल
भटक रहे हैं पर हर पल
मिले कहीं शान्ति-मन्त्र—
व्यक्तिहित समाजतन्त्र
मुक्तप्राण मन स्वतन्त्र।

सामूहिक स्वर : आकुल हम असंतुष्ट,
जानते न आत्म इष्ट

(सामूहिक नृत्य द्वारा असंतोष-आकुलता)

[शनैः शनैः शान्ति का वातावरण, जैसे गूंज के स्वर उभरते हैं]

महावीर वाणी : (गूंज में) वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं

गौतम : धन, दुःख बढ़ाने वाला है।

गूंज : जेण सिया तेण णो सिया

गौतम : तुम जिन वस्तुओं से सुख की अभिलाषा करते हो, वे वास्तव में सुखदायक नहीं हैं।

गूंज : इच्छा हु आगास समा अणंतिया

गौतम : इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

गूंज : अपरिग्गहो अणिच्छो

गौतम : इच्छा रहित होना अपरिग्रह है।

गूंज : सव्वत्थ अप्प वसिओ णिस्संगो णिब्भओ य सव्वत्थ।

गौतम : परिग्रह से रहित मनुष्य स्वाधीन और निर्भय रहता है।

गूंज : विणाय तण्हो विहरे

गौतम : तृष्णा से मुक्त होकर विचरो।

गूंज : भाव विमुत्तो मुत्ताण य मुत्तो बंधबाइमित्तेण

गौतम : अंतरंग से भावों में परिग्रह से मुक्त होओ। बन्धु-बान्धवों और मित्रों से अलग हो जाना अपरिग्रह नहीं है।

गूंज : आदसहा वादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवह।
तं पर दव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं॥

गौतम : आत्म-स्वभाव से भिन्न; चेतन, अचेतन और चेतन-अचेतन सहित जो भी वस्तुएँ हैं, वे सब पर-द्रव्य हैं।

(सारा समूह शान्ति, आश्चर्य और गहनता से उक्त वचनों को सुनता है)

स्त्री-समूह : (प्रसन्न-मुख)
मेरी पुकार का उत्तर है यह ज्योति-स्वरों का प्रसरण,
मेरे मानस के रुद्ध द्वार में सूर्य-किरण का विचरण।

पुरुष-समूह : (हर्ष से गद्‌गद्‌)
आहा हा हा हा हा !
अमृत की बूँदें बरस रहीं
तपती उर-भू को सरस रहीं
ध्रुव तारा चमका मानस-नभ
इंगित करता शुभ मार्ग सुलभ।

हिप्पी-जन : अंतर का झरना किलक उठा
हम हल्के-फुल्के फूल खिले,
यह झंझा दिग्भ्रम दूर हुआ
भटकी नौका को कूल मिले।

(हर्ष वाद्य-ध्वनि के स्वर; मैत्री, प्रेम प्रफुल्लता का नृत्य)

सब मिलकर : हम महावीर के हैं अनुगत
हम अनेकान्त-वादी सहमत

(गायन)

सुख बरसे जीवन सरसे; जीवन जीने का मंत्र जपें, हरषाएँ
तप, त्याग, अहिंसा, सहज धर्म अपनाएँ
समता, समानता, प्रेम-प्यार बरसाएँ
जीवन जीने का मंत्र जपें, हरषाएँ।

(गायन-नृत्य करते करते प्रस्थान)

• • •

निर्वाण

दसवाँ दृश्य

[आलोक प्रपात एवं काल-पुरुष और कथा-वाचिका के नृत्य-अभिनय द्वारा दृश्य-अंकन]

पार्श्व-स्वर : ज्ञान-ज्योति से सारे ब्रह्माण्ड को जगमगाते
सारे युगों और कालों में उतरते, विचरते, थाह पाते।
अमरत्व की ओर अग्रसर, मुक्ति के सोपानों पर चढ़ते,
महावीर रहे मानव—मानव—सम्पूर्ण मानव;
मानव की आत्मा के चरम विकास-पुञ्ज,
और साथ में ही मानव की देह-सीमा में बद्ध।
पुद्गल और अचेतन के अणुओं से उन्मुक्त करते
आत्म-तत्त्व की मूल संरचना को,
निर्वाण के क्षणों की ओर आरोहण करते।

दूसरा स्वर : संध्या की वैरागी लालिमा,
उतर गयी कार्तिक की तारों भरी श्यामलता में,
चतुर्दशी के चाँद को उपग्रह की ओट लिये।
प्रभात की किरणों में घुल-मिल
वह उदित होने को उद्यत हुई कि,
वीर प्रभु का तेज-पुञ्ज जगमगा गया, चारों दिशाएँ—
आलोक ही आलोक—प्रकाश ही प्रकाश—
प्रकाश में प्रकाश के प्रतीकों का प्रतिरूपण—जगमग आरती
तीनों लोकों में झिलमिला उठी, दीपों की पाँति-पाँति।

पहला स्वर : हुए मोक्षगामी प्रभु।
चर-अचर विह्वल।
गौतम गणधर का
ज्ञान-राग चंचल।

मानव का हृदय
कैसे होता अचल
समझ कर भी मर्म
प्राण-सत्व था विकल।
देव, इन्द्र, सुर, असुर, मानव-जन
ज्योति-दीप थामे,
नयनों में हर्ष, अश्रु एक साथ भरते
जय जय-कार करते—
लेते पुण्य-सरिता में अवगाहन।

[नृत्य-नाटिका के सारे पात्र सामूहिक रूप में दीपज्योति हाथों में थामे मंच पर प्रवेश करते हैं और स्तोत्र-पाठ करते हैं]

गायन स्वर (सामूहिक) :

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे॥

पूर्ण पटाक्षेप

वीतराग

मंच-रूपक

वीतराग

पहला दृश्य

(वाद्य-संगीत में प्रभात के स्वर। पार्श्व में मंदिर में प्रवेश करते समय श्रावक गणों द्वारा घण्टा-ध्वनि करने की आवाज़। मंच पर विविध प्रान्तों की वेष-भूषा में नर-नारियों का आना-जाना जैसे मंदिर जा रहे हों। धीरे-धीरे छायाचित्र में मंदिर का शिखर उभरता है और मंच पर आते-जाते नर-नारी मंदिर की ओर मुख कर खड़े हो जाते हैं—स्वर उभरते हैं।)

पार्श्व स्वर : दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतु ।
दुग्धाब्धि-फेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी,
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानम् ॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-
धार्माद्धिवर्द्धित-महामुनि-सेव्यमानम् ।
विद्याधरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य-
पुष्पांजलिप्रकरशोभित-भूमिभागम् ॥

णिस्सही, णिस्सही, णिस्सही,
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु
जय हो, जय हो, जय हो···जय महावीर स्वामी की जय···
जय महावीर की जय···
जय पार्श्वनाथ भगवान की जय···
जय श्री शान्तिनाथ भगवान की जय···
नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु···

(मंच पर के नर-नारी धीरे-धीरे चले जाते हैं।)

(वाद्य अन्तराल)

(मंच पर प्रकाश। पार्श्व से सामूहिक स्वर उभरते हैं और साथ-ही-साथ रीना और निताशा का प्रवेश)

पार्श्व-स्वर (पूजा के) :

गरभ साढ़ सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ-हरना।
सुर सुरपति तित सेव करी नित, मैं पूजों भवतरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना।
श्री वर्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो सरना॥

ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निताशा : मेरे कानों में आवाज पड़ रही है—'श्री वर्धमान जिनरायजी, मोहि राखो हो सरना'···क्या यह तीर्थंकर महावीर की पूजा हो रही है ?

रीना : हाँ, ये भगवान् के गर्भ में आने की घटना के प्रति अपने उत्साह को दिखाने के लिए उस पुण्य तिथि के स्मरण में अर्घ्य चढ़ा रहे हैं।

निताशा : अर्घ्य चढ़ा रहे हैं ! इतने उछाह के साथ !!···

रीना : गर्भ में आने के मंगल पर्व की स्मृति में ही नहीं; भगवान् का जन्म होना, उनका तप करना, और तप के द्वारा महान् ज्ञान को प्राप्त करना और अन्त में मोक्ष प्राप्त करना आदि सब घटनाओं की स्मृति में पूजा होती है।

निताशा : पर क्या आज के युग में इन सब घटनाओं को याद कर, भक्ति और पूजा-पाठ में इतना डूब जाना कुछ विचित्र नहीं लगता ?

रीना : निताशा ! यह बुद्धि से परे की बातें हैं। अपने को जब तक श्रद्धा और भक्ति की भावना में पूरी तरह तन्मय न कर लो, तब तक किसी असाधारण ज्ञान का रस हिये में नहीं उतरता। उसमें डूब-कर ही ऐसी स्थिति में—ऐसे लोक में पहुँचा जाता है जहाँ यथार्थ और स्वप्न का भेद मिट जाता है। तभी तो भावना-भरे पूजा के स्वर और कवि की भाषा मुझे ले जा रही है उसी लोक में। (स्वगत) मेरी आँखों में साफ-साफ दिखाई दे रहा है वह काल, जब भगवान् गर्भ में आये—वह देखो ! २५७२ साल पहले का भारत। (छाया चित्र में भारत में स्थित वैशाली) जम्बू द्वीप का भरत खंड। इसका पूर्वोत्तर भाग है विदेह प्रदेश। विदेह प्रदेश में गणतन्त्र प्रणाली से अनुशासित है वज्जि संघ।

प्रमुख हैं महाराज चेटक। इनकी बड़ी पुत्री हैं त्रिशला देवी, जिनका विवाह राजा सिद्धार्थ से हुआ। सिद्धार्थ, जो वज्जिसंघ के गणराज्य की वैशाली नगरी के समीपवर्ती कुण्डपुर के राजा हैं। **(मिताशा और रीना मंच पर से अदृश्य)** देखो-देखो कुण्डपुर में क्या हो रहा है— **(धीरे-धीरे छायाचित्र हटकर मंच पर प्रकाश)**

दूसरा दृश्य

(मंच पर हरवाहे एक भोजपुरी गायन गाते जा रहे हैं)

आज फूली फसल अनेकानेक रंग में,
कैसे फूट गइले रे ये फुलवा तरंग में···
खिले बाटे सरसों, महक उठे गेंदवा
हरे धान, रतन से बरसे अंगनवा।
कैसा जादू होई ले रे, बैसाली नगरमा,
मंगल औ सुभ का मिलन धड़कन मा।
हरे धान रतन से बरसे अंगनवा।

(तीन संभ्रांत नारियाँ दूसरी ओर से आती हुई)

मंजुश्री : ए-री-ओ गुणप्रिया ! देख तो उधर प्राची में। यह सूरज का लाल गोला सोने के कलश का रूप धारण कर रहा है—देख तो सही !—अरी यह किरनों का जाल उस पर कैसी महीन जाली बुन रहा है—

गुणप्रिया : अरे हाँ ! सूरज की ऊषा को इस तरह आकार लेते तो आज तक नहीं देखा ! अरी मंजुश्री ! देख तो, जैसे चाँदी का श्रीफल रखा जा रहा हो सूरज के कलश पर। यह क्या ?—यह दमकते से कलश पर चमचमाता चाँदी का नारियल—अरी आज कैसा प्रभात खिल रहा है—उफ् ! यह हम क्या देख रहे हैं ?—

मंजुश्री : अरी प्रिया ! मेरा तो हृदय न जाने कैसा हुआ जा रहा है—हँसने और रोने को एक साथ जी उमड़ रहा है। ऐसी अनिवर्चनीय प्रतीति आज तक नहीं हुई ! कहते हैं कि कोई महान् आत्मा जब संसार में प्रवेश करती है तो जल, थल, आकाश, वायु, अग्नि पाँचों तत्त्वों में एक असाधारण अदृश्य सम्मिश्रण होता है जो दिशा-दिशा में अपूर्व चमत्कार बन कर प्रस्फुटित होता है।

(सुमति, सुनैना और सुलक्षणा प्रवेश करती हैं)

तीनों एक साथ : अरी मंजुश्री, ओ गुणप्रिय ! यहाँ आँखें विस्फारित कर प्राची को क्या निहार रही हो— कहाँ समय है आश्चर्य में डूबे रहने का? जल्दी आओ—चलो राजा के प्रासाद की ओर। नगर भर में समाचार हिलोरें ले रहा है कि रानी त्रिशला के जिज्ञासु चित्त का समाधान करने के लिए आज विशेष सभा आयोजित है। विद्वद्गण, ज्योतिषाचार्यों की उपस्थिति तो है ही, साथ में जिज्ञासा का समाधान स्वयं राजा करेंगे—

गुण० और मंजु : और हमारे जिज्ञासु चित्त का समाधान ?

सुमति : तुम्हारे जिज्ञासु चित्त का ? क्या कह रही हो ? क्या महारानी त्रिशला की भाँति तुमने भी कुछ अचम्भे भरी अनुभूति की है ? अपने पैर धरती पर ही रखो, आसमान में उड़ान भरने की कोशिश मत करो।

गुणप्रिया : अरे ! हम खड़ी तो धरती पर ही हैं, पर मन सचमुच आकाश के ओर-छोर तक फहर रहा है। हाँ, क्या कहा तुमने ? 'महारानी त्रिशला की जिज्ञासाओं का समाधान राजसभा में हो रहा है।' चलो, तुम्हारे साथ चलते हैं राजा की सभा में—हमारा हृदय भी वहीं जाकर विश्रान्ति पायेगा— अभी मत पूछो कि हमने क्या देखा और हमें कैसा लग रहा है !

(बहुत-सी आवाजें स्त्री और पुरुषों की—'महाराज सिद्धार्थ की सभा में चलो'—जल्दी चलो— नागरिकों का प्रवेश, बातचीत करते हुए)

वार्ता स्वर : घोषणा है कि राजप्रासाद में 'स्वप्नफल-दर्शन सभा' आयोजित है। महारानी त्रिशला ने आश्चर्यजनक और अद्भुत स्वप्न देखे हैं।

: क्या···सपने ?

: रानी त्रिशला ने ?

: कितने ?

: सोलह।

: चौदह···

: ओह···सोलह या चौदह—

: हाँ ! तो उसका अर्थ बतायेंगे राजा सिद्धार्थ।

: किसी ज्योतिषी से क्यों नहीं पूछते महाराज ?

: अरे ! महाराज तो स्वयं महान् ज्ञानी हैं।

: इसमें क्या सन्देह है, उनकी बुद्धि और हृदय की प्रखरता आलोकित है।

: क्यों न हो ? वे निर्ग्रन्थ श्रमणधर्म के अनुयायी हैं न, जो हजारों वर्ष पहले भगवान् ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित हुआ—उस धर्म में तो मनुष्य को अपनी आत्म-शक्ति को जागरूक और विकास-शील रखना होता है, जिससे अधिकतम 'तथ्य मनुष्य की अपनी ही ज्ञान-ज्योति में झलक जायें।

(पार्श्व से राज्य सभा के मुख्य घोषक के स्वर। नागरिक ध्यान देकर सुनते हैं।)

पार्श्व-स्वर : वैशाली गणतन्त्र में, कुण्डपुर के लोक-प्रिय, व्यक्ति-स्वतंत्रता, समानता एवं युगानुकूल शासन पद्धति के उन्नायक, प्रजापति राजा सिद्धार्थ, आज प्रातःकाल की सभा में प्रबुद्ध कुण्डपुर-निवासियों और उदारमना कुशल शासन-सहयोगियों के सम्मुख, रानी त्रिशला को मध्य-रात्रि में दिखे असाधारण स्वप्नों की विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं। इसलिए आज गौरवशाली कुण्डपुर लोक-तन्त्र के प्रत्येक नागरिक राज-भवन में निमन्त्रित हैं।

सुलक्षणा : सुना री सखियो—चलो-चलो।

(नागरिकों का राजभवन की ओर जाना)

तीसरा दृश्य

(राजा सिद्धार्थ का राज-भवन। राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला, सभासद, ज्योतिषी, पंडित, सुलक्षणा, सुनैना, सुमति, गुणप्रिया व मंजुश्री यथास्थान आसीन हैं। हरबाहे और अन्य नागरिक भी उपस्थित हैं)

सिद्धार्थ : बन्धुगण ! प्रियजनो ! हमारे गणतंत्र के कीर्ति-स्तम्भ मान्य सदस्यो ! विद्वत्परिषद् के आदरणीय पंडितवर ! मेरा सौभाग्य है है कि मेरा और आप सबका भाग्य एक ही संयोग-सत्ता के एक ही काल-क्षेत्र के प्रकाश-स्तम्भ से उद्भासित है। इसलिए स्वप्नों का प्रभाव हम सब के जीवन से सम्बन्धित है। स्वप्न-फल आपके सम्मुख प्रस्तुत हो, यह मेरा धर्म-निष्ठ कर्त्तव्य है। महारानी ! प्रिये, आप अपने स्वप्नों का विवरण दें।

त्रिशला : अभिनन्दन करती हूँ उपस्थित प्रियजनों का और महाराज का। महाराज ! कल रात्रि के मध्य-प्रहर के उत्तरार्ध में अत्यन्त मनोहारी स्वप्न मेरे मानस-पट पर चित्रित हुए। मेरा चित्त उसी समय से एक अनिवर्चनीय अनुभूति से आह्लादित है।

सिद्धार्थ : असाधारण और अर्थविभूषित स्वप्न-शृंखला किसी विशेष घटना के आगमन की सूचक होती है। मध्य-रात्रि के उत्तरार्ध में महारानी को स्वप्न दिखने का अर्थ है कि महारानी की कोख में किसी विशिष्ट पुण्यात्मा ने प्रवेश लिया है। प्रिये ! क्रम से अपने स्वप्नों को बताती जाओ।

त्रिशला : महाराज ! प्रथम स्वप्न में झूमता—चार-दन्त वाला ऐरावत गजराज दिखाई दिया।

सिद्धार्थ : महारानी ! गजराज महानता का प्रतीक है। चार दाँत वाले गजराज से अर्थ है कि आने वाला जीव, चार प्रकार के धर्म को कहने वाला होगा। वे धर्म हैं—श्रावकधर्म, श्राविकाधर्म, साधुधर्म, साध्वी-धर्म।

सभासद : धन्य, धन्य···

त्रिशला : महाराज ! दूसरे स्वप्न में धवल वृषभ को देखा।

सिद्धार्थ : रानी ! वृषभ बीज बोने का साधन है। गर्भ में स्थित बालक धर्म-प्रवर्तक यानी बोधि-बीज बोने वाला होगा।

हरवाहे : धन्य—धन्य ! वृषभ शुभ चिह्न है ही, महाराज—

त्रिशला : महाराज ! तीसरे स्वप्न में चपल शरीरी सुघड़ गतिमान गर्जन करता सिंह दिखाई दिया।

सिद्धार्थ : प्रियकारिणि ! सिंह पराक्रम और अपार ऊर्जा का द्योतक है। जिस प्रकार वनराज सिंह अपने पराक्रम और शक्ति-बल से सारे आक्रमणकारियों को पराभूत करता है, उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ में स्थित जीव इस संसार-वन में अपने आत्मबल से कर्म रूपी शत्रुओं को पराजित करेगा।

पंडित स्वर : धन्य महाराज, धन्य ! गरजते सिंह का स्वप्न में आना आत्मबल ही प्रकट करता है।

त्रिशला : महाराज ! अगले स्वप्न में कमल पर विराजमान लक्ष्मी के दर्शन हुए।

सिद्धार्थ : प्रिये ! कमलासना लक्ष्मी का दर्शन मोक्षरूपी लक्ष्मी के वरण का प्रतीक है।

गुणप्रिया : (स्वगत सी) कमल पर विराजमान लक्ष्मी—अतुल ऐश्वर्य किन्तु भोग की कीचड़ से अलग ऊपर उठे कमल के फूल-सा।

त्रिशला : और महाराज ! मंदार पुष्प की मालाओं का युगल दिखा।

सिद्धार्थ : महारानी ! मंदार पुष्प की सुरभि की भाँति ही बालक की यश-सुरभि होगी जो तन और मन दोनों का ताप हरेगी।

सभासद : धन्य महाराज, धन्य—

त्रिशला : महाराज ! इसके अनन्तर चन्द्र और सूर्य दिखे।

सिद्धार्थ : बालक चन्द्रमा की भाँति कांतिमान् और सूर्य की भाँति ज्योतिर्मय होगा। वह दिवा-रात्रि, चिर काल तक, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला होगा।

त्रिशला : धन्य हुई महाराज ! स्वर्ण कलश का जोड़ा और ध्वजाएँ किन गुणों की प्रतीक हैं ?

सिद्धार्थ : कल्याणी ! स्वर्ण-कलश धर्म प्रासाद के शिखर हैं। पताकाएँ द्योतक हैं बालक की वायवी सूक्ष्म तत्त्व को प्रसारित करने वाली वाणी की। वह ध्वजा बन चारों दिशाओं में फहरायेगी।

त्रिशला : कृतार्थ हुई महाराज ! अब अगले स्वप्न में दीखे चपल मीन-युगल का भाव बताएँ।

सिद्धार्थ : विदेहदत्ते ! मीन-युगल संतति के सौरभ-विकास का सूचक है—और सूचक है प्रेरणात्मक शक्ति की चेतना का।

त्रिशला : धन्य हैं महाराज ! आपके सूक्ष्म-विवेक के प्रति नत हूँ—अब रहे कमल-दल-पूरित सरोवर और लहराता सागर।

सिद्धार्थ : सौभाग्यी ! कमल-दल पूरित सरोवर उस महान् आत्मा की स्थिर तरलता का प्रतीक है। लहराता सागर उसकी गगन-चुम्बी दिगन्तव्यापी क्षमता का।

त्रिशला : कुछ स्वप्न और शेष हैं महाराज ! रत्न-जड़ित सिंहासन और रत्नों की राशि—आकाशगामी विमान और नाग विमान—और अन्त में निर्धूम अग्नि। नहीं समझ पायी इनका अर्थ महाराज !

सिद्धार्थ : सुहासिनि प्रिये ! मैं कितना भाग्यवान हूँ कि मेरे गृह में ऐसे पुत्र का जन्म निर्दिष्ट है, जिसमें सारे उन लक्षणों का समावेश है, जो मोक्षगामी जीव के बालक की वर्चस्वता और प्रभुत्व का प्रतीक है। रत्न-राशि उसके जगमगाते गुण-रत्नों का सूचक। आकाशगामी-विमान देवों द्वारा उस जीव के पूजित होने को, और नाग-विमान

आकाश के देवों और धरती-धारक शक्तियों द्वारा उसकी वन्दना को प्रकट करते हैं। निर्धूम अग्नि वह तेजोमय ताप है जो कर्म से धूमायित आत्मा को कंचन काया प्रदान करती है।

त्रिशला : धन्य···धन्य···कृतार्थ···कृतार्थ। आज स्वजन, पुरजन और समस्त बन्धु-बान्धवों के समक्ष इस अपार सौभाग्य तिलक को धारण करती हूँ। और अंतरंग आत्मा से तीन लोकों की सुख और शान्ति के दायक परमात्म पद से सुशोभित जीव की जननी का गौरव वहन करने की सामर्थ्य का अनुभव करती हूँ।

प्रजागण : धन्य··· धन्य···धन्य !···माता त्रिशला की जय।···माँ विशाला की जय।···महाराज सिद्धार्थ की जय।

(मंजुश्री, गुणप्रिया व सखियाँ क्रम से बोलती हैं)

मंजुश्री : इसीलिए मन में उमंग थी···

गुणप्रिया : तन-मन में पुलकित तरंग थी···

सुलक्षणा : प्राची में रवि-कलश सुसज्जित···

सुनैना : रजत-रश्मि श्री-फल से मज्जित···

चौथा दृश्य

(रीना और निताशा का मंच पर अभिनय, जैसे कल्पना-निद्रा से जगी हों)

रीना : ओह !···क्या सुन्दर दृश्य था मेरे मानसपट पर ! क्या मैं पुण्यात्मा हूँ ?

निताशा : अरी सुन सुन। ये ध्वनियाँ ! अभी मन्दिर में पूजा हो रही है।

पार्श्व स्वर : **(सामूहिक पूजापाठ)**

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुंडलपुर कन-वरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव-हरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना॥

ओं ह्रीं चैत्र-शुक्ल-त्रयोदश्यां जन्म-मंगल-प्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रीना : अरी तूने सुनी ये पूजा की पंक्तियाँ ! यह अर्घ्य भगवान महावीर के जन्म मंगल के लिए चढ़ाया जा रहा है। चैत का महीना, शुक्ला त्रयोदशी, मध्य रात्रि की बेला, हस्त उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र का

योग। पुण्य-मंगल-राग की ध्वनि त्रैलोक्य में गूंज उठी। त्रिशला की कोख से बालक वर्धमान का जन्म हुआ। भावनाशील प्राणी हर्ष से विह्वल हो उठे। कल्पनालोक में कवियों के स्वर पंखों पर उड़ चले। वैभव और सामर्थ्य के प्रतीक सौधर्म इन्द्र और कला-चतुर इन्द्राणी, त्रिशला देवी को सुखद निद्रा में सुला, बालक को अभिषेकमंगल मनाने भरत-खण्ड में स्थित मेरुपर्वत की पाण्डुक शिला पर ले गये।

(छायाचित्र में जन्माभिषेक का दृश्य)

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के)**

सुरनत मुकुट रतन छवि करें, अंतर पाप-तिमिर सब हरें।
जिनपद बंदूं मन-वच-काय, भव-जल-पतित उधरन सहाय ।।

रीना : ओह् नीतू ! देख रही है न। देवताओं के मुकुट-मंडित मस्तक बालक भगवान के चरणों में नत हैं। चरणों में झुके मुकुटों के रत्नों की दीप्ति ने अन्तस् का सारा पाप-तिमिर हर लिया। क्षीर-सागर से भर लाये एवं दूध, घी, दही तथा इक्षुरस से मिश्रित और कुंकुम, केसर व कपूर से सुवासित जल के १००८ रत्न-जड़ित स्वर्ण-कलशों से न्हवन हो रहा है बालक भगवान का। सुर-असुर, नर-नारी सब गा उठे हैं…

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के)**

सहस अठोत्तर कलसा प्रभु जी के सिर ढरे।

(बार-बार पंक्ति गायन)

पार्श्व-स्वर : **(श्रावकों के, दूसरी ओर से)**

घनन-घननं घन घंट बजै, दृमदं-दृमदं मिरदंग सजै।

(घण्टों की ध्वनि)

गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता ।।

निताशा : अरी रीनू प्रिय ! तू तो मुझे इस पृथ्वी पर रहते उन भव्य लोकों में भ्रमण करा रही है, जहाँ के दर्शन कर आत्मा, अंतस् के आनन्द से झूम उठती है। तूने ही सुनाया था न, कि जब बालक भगवान को स्नान कराने के बाद इन्द्राणी उनकी देह पोंछ रही थी, तो बालक के गाल बार-बार पोंछने पर भी उन पर जल-बिन्दु झलकते ही रहे। चकित हुई थी इन्द्राणी कि बूंदें क्यों नहीं पुछ रहीं ? पर वे पानी की बूंदें थीं कहाँ ? वे तो भगवान के दर्पण-तुल्य स्वच्छ निर्मल कपोल पर उसी के आभूषणों की चमक थी।

रीना : भगवान के शरीर का वर्ण था तपे सोने कुन्दन-सा दिव्य और उनके दायें तलवे पर था सिंह का चिह्न, जो उनका लक्षण-चिह्न माना गया है। शंख, कमल, धनुष आदि १००८ मांगलिक चिह्नों से युक्त था उनका सुभग तन! ···

निताशा : रीनू ! मुझे रमने दे अतीत में, मुझे ले चल बालक भगवान के दर्शन कराने कुण्डपुर ग्राम में। मैं उन चक्षुओं की कामना कर रही हूँ, जो बालक वर्धमान के वर्धन का दिग्दर्शन करने में समर्थ हों।

रीना : 'तथास्तु'। ये सच्ची भावनाएँ हम दोनों को त्रिशला माँ और राजा सिद्धार्थ के भवन में पहुँचाने में समर्थ हों।

(अन्धकार)

पाँचवाँ दृश्य

(रानी त्रिशला बालक वर्धमान को पालने में झुलाती हुई)

त्रिशला : (लोरी के स्वर में)

यैः शान्तराग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति।।
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष - विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।।

हाँ, ठीक ही तो कह रही हूँ···तुझ जैसे पुत्र को जन्म देने वाली मुझसे अधिक सौभाग्यशालिनी और कौन माँ हो सकती है ? **(बालक की ओर निहारती हुई कुछ गंभीर होकर)** पर तेरा यह शांत राग··· मोह-माया से निर्लिप्त रूप····· तुझे हृदय से जब-जब भी लगाती हूँ न जाने क्यों वीतराग-तृप्ति की सी अनुभूति होने लगती है। लगता है जैसे विश्व के प्राणि-मात्र के स्पन्दन का नाद तेरी कोमल रोमावलि में गुँजरित है। यह पुलक···यह अनिर्वचनीय सुख की प्रतीति, और साथ ही साथ, यह कैसी विकल जिज्ञासा का उन्मेष जो कह रहा है कि अपलक तुझे निहारती ही रहूँ और अन्तर में

घुमड़ते सारे प्रश्नों का एक साथ उत्तर पा जाऊँ। मैं तुझसे पूछती हूँ मेरे लाल ! बता, मैं कौन हूँ, क्या हूँ ? कहाँ से मेरा आना हुआ और क्यों ? कहाँ जाना है मुझे ? यह सुख क्या है···और दुःख क्या है ? मुझे क्या करना है ? जन्म क्या है···मृत्यु क्या है ? और जीवन ?·····**(सहसा, स्वर आत्म-संवादी न रहकर प्रत्यक्ष को सम्बोधित करने के ढंग में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी बीच महाराज सिद्धार्थ का प्रवेश। महाराज को देखकर)** महाराज आप ? स्वामी···प्राणनाथ···मुझे बोधिये। मेरे प्रश्नों का समाधान कीजिये।

सिद्धार्थ : प्रिये ! मेरे पुत्र तीर्थंकर वर्धमान को जन्म देने वाली गौरवशीला त्रिशले ! इन प्रश्नों का उत्तर देने ही वर्धमान का जन्म हुआ है। इस मुख छवि को देख ! अपने बालक के चिन्तनशील सरल नेत्रों में झाँक··· इसके शरीर से प्रस्फुटित होती हुई ज्योति के प्रकाश में अन्तर-रहस्यों को उद्भासित होते देख ! यह परम आत्मोन्मुखी बालक है देवि ! और स्वयंबुद्ध···स्वयंभू।

त्रिशला : धन्य हूँ मैं···धन्य हैं आप···मेरे मानस चक्षुओं के कपाट खुलते जा रहे हैं देव !···मैं वर्धमान का भविष्य देख पा रही हूँ। वह बढ़ते-बढ़ते आठ वर्ष का हो गया है। हमने उसे अन्य माता-पिताओं की भाँति विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास भेजा है।

(धीरे-धीरे मंच पर अँधेरा)

सिद्धार्थ : और जानती हो कि गुरु ने क्या कहा ?

(छायाचित्र में गुरु)

गुरु के स्वर : राजन् ! जिस प्रकार इस बालक के जन्मते ही आपके राज्य में धन-धान्य, सुख-सुषमा और यश-कीर्ति की वृद्धि सहज स्वयमेव हुई है, उसी प्रकार यह राजकुमार स्वयं-बुद्ध है। इसे ज्ञान देना किसी की सामर्थ्य नहीं है। यह तो स्वयं ज्ञान का पुञ्ज है। त्रैलोक्य में इसकी वाणी शाश्वत ज्ञान-गंगा बहायेगी, ज्ञान-रत्नों की वर्षा करेगी। यह बालक सन्मति नामकरण का अधिकारी है जन्म से।

(अँधेरा। साथ-साथ पार्श्व से श्रावकों के स्वर)

पूजा के पार्श्व-स्वर : (बार-बार)

जय वीर, महा अति वीर सन्मति नायक हो।
जय वर्धमान गुणधीर सन्मति दायक हो।

(स्वर ऊँचे उठते जाते हैं—वाद्य संगीत)

(धीरे-धीरे छायाचित्र हटकर मंच पर प्रकाश)

सिद्धार्थ : प्रिय वैशालिनि ! स्तम्भित हो तुम, आश्चर्य में डूबा हूँ मैं।

त्रिशला : महाराज ! मेरे दिग्दर्शी चक्षु दूर के क्षितिजों तक खुलते जा रहे हैं।···यह पालने में झूलता वर्धमान उद्यान में जा पहुँचा है। खेल रहा है अपने साथियों के साथ। महाराज···महाराज ! यह क्या ध्वनि सुन रही हूँ ?

(मंच पर अन्धकार और प्रकाश बारी-बारी से। सिद्धार्थ औ त्रिशला चकित मुद्रा में सुन रहे हैं बालकों की वे ध्वनियाँ जो पार्श्व से आ रही हैं।)

पुष्पक : ओ प्रभंजन ! ओ विमान ! ओ सत्यकी ! अरे सब इधर आओ, जल्दी दौड़ कर, देखो तो यह पेड़ आमों से लदा हुआ है।

प्रभंजन, विमान और सत्यकी (एक साथ) : आये···आये···

पुष्पक : अरे जोर से हिलाओ न पेड़ को, तो आम झड़ें·····पीले-पीले पके आम।

प्रभंजन : अरे पुष्पक ! जाओ, उधर से वर्धमान को बुलाओ। वह उधर के कोने में दूर बैठा है। वर्धमान ! वर्धमान !!

पुष्पक : वर्धमान !···वर्धमान !!···

विमान : अरे···हटो हटो···! हटो···हाय रे !

सत्यकी : यह क्या···**(भयभीत होकर)** नाग···नाग···

सब बालक : हाय नाग ! नाग···भयानक···अब क्या करें ? वर्धमान ! वर्धमान ! वहीं रहना दूर···फेंको पत्थर···मारो इसे···मारो···मारो···मारो···।

प्रभंजन : अरे यह क्या ? वर्धमान क्या कर रहे हो तुम ? नाग को हाथ से उठा लिया। अरे काटेगा यह। फेंको इसे। भागो···भागो···

विमान : अरे देखो तो ! वर्धमान ने ऐसे भयंकर फुंफकारते नाग को कैसे प्यार से उठा कर दूसरे स्थान पर रख दिया।

सत्यकी : और नाग ने कुछ नहीं किया···न काटा, न फुंफकारा। आश्चर्य··· आश्चर्य···!!

प्रभंजन : देखो तो तनिक, कितनी सहजता और सरलता से नाग को उठाया है इसने। धन्य ! धन्य !

सब एक साथ : आज से हम वर्धमान को 'महावीर' कहेंगे। महावीर···कितना वीर है यह···कितना धीर, बलवीर···महावीर···

(अंधकार)

छठवाँ दृश्य

पार्श्व से आते हुए 'महावीर-महावीर' शब्द गायन-स्वरों में परिवर्तित होते हैं। उनके साथ झांझ-मंजीरा बजाते भक्त जन मंच पर प्रवेश करते हैं। ये भक्त-जन भील और मीनों के वेष में हैं।)

भक्तजन : महावीर महाराज···महावीर महाराज···करमों के फंदे छुड़ाय दो···
लाख चौरासी योनि में भ्रमतों···अब की पार उबार दो जी।
महावीर महाराज, मोरे स्वामी ! अब की बार उबार दो।
महावीर महाराज···करमों के फंदे छुड़ाय दो।
(अन्तिम पंक्ति कातर स्वर में गाते हैं और गाते-गाते प्रस्थान। इसी बीच निताशा और रीना का प्रवेश)

निताशा : अरी रीना ! इस भाव-भीनी शब्दावली के पीछे झलक रही है उस युग की कातर पुकार जिसने महावीर की-सी दिव्य आत्मा का आह्वान किया। जग-जीवन में प्रवाहित काल-तरंगें एक छोर पर उत्ताल हो असीम ऊर्ध्व को स्पर्श करती हैं और दूसरे छोर पर वे रसातल तक झुक जाती हैं। किन्हीं प्राणों में तीव्र उद्वेलन होता है और कुछ जड़ होने लगते हैं और दोनों की स्वर-लहरियाँ टकराती हैं दिव्य आत्मा के जागृत, संवेदनशील अंतस् से।

रीना : निती ! तेरी इस बौद्धिक जागरूकता ने मुझे काल-इतिहास के यथार्थ धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। मैं बालक महावीर को किशोर होता देख रही हूँ समय के उस काल-खण्ड में जब शुभ और स्वस्थ जीवन-चिह्न ह्रास की ओर थे। जैन शास्त्रों में इसे अवसर्पिणी काल यानी मानव की पतनोन्मुख गति का दुषमा-सुषमा आरा या वृत्यांश कहा है।

निताशा : हाँ सुना है मैंने। इतिहास के पन्नों में यह समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी था।

रीना : भारत के पूर्व और उत्तर में राजतन्त्र और गणतन्त्र दोनों तरह की राजनीति स्थापित हो रही थी। गणतन्त्रों में वज्जि, और राजतन्त्रीय शासन में मगध प्रधान थे। वज्जि गणतंत्र में वैशाली प्रमुख

ठौर थी ज्ञातृ तथा संघ में सम्मिलित अन्य वंशों की। संघ के राजा थे चेटक—वर्धमान के नाना। कपिलवस्तु मुख्यनगर था शाक्य-वंश का, जहाँ के राजा थे शुद्धोधन, महामना बुद्ध के पिता। मगध राजतन्त्र के राजा थे श्रेणिक बिम्बसार जिनसे वर्धमानकी मौसी चेलना का विवाह हुआ था।

निताशा : रीना ! यह तो अत्यन्त मनोरंजक प्रसंग ले आयी तू।

रीना : मनोरंजक से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण। इधर थी वज्जि गणतंत्र की राजधानी वैशाली, जहाँ की गणतंत्रीय व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वाधीनता के बीज अंकुरित हो रहे थे और उसी के आस-पास थे राजतंत्रीय, पुरातनपंथी तंत्र···जहाँ हो रहे थे यज्ञ—पशु-बलि देकर धर्म का क्रिया-काण्ड, दासों का क्रय-विक्रय, शूद्रों का उत्पीड़न।

निताशा : नारी-जाति की दयनीय दुरवस्था भी तो थी उस काल में ?

रीना : हाँ नीतू! इस युग की स्थिति को तू ठीक समझ रही है। काल तरंगों का एक छोर था ऊर्ध्वगामी और दूसरा रसातल को छूता हुआ। एक ओर थी प्रगतिशील खिलती हुई मानवता और दूसरी ओर थी वह सभ्यता और शासन-प्रणाली जो आदिम मनुष्य की जड़ता में प्रवाहमान थी।

निताशा : ओह ! रीना ! समझी। ऐसे ही युग में तो मानवता को संतुलित करने जनमे युग-पुरुष महावीर।

रीना : सच निताशा ! हम दोनों एक बार फिर उस अतीत में उतर रहे हैं। सूक्ष्म और स्थूल अतीत काल की ध्वनि-तरंगें हमें स्पर्श कर रही हैं।

(पटाक्षेप)

सातवाँ दृश्य

(इस दृश्य को ध्वनि व द्रष्टव्य के सामंजस्य से प्रस्तुत किया जाये। पार्श्व से कोलाहल के स्वर 'भागो' 'बचो' 'अरे कुचला' घोड़ा है या बिजली ?' '' 'अरे रोंद डाला उसे'—आदि। साथ ही साथ, घोड़े की कर्कश टाप और जोर से फू-फू साँस लेने और घोड़े के हिनहिनाने और घुर्राने की आवाज)

सैनिक : (कड़े स्वर में) महाराज चन्द्रदीप्ति की जय बोलो···झुका दो अपने मस्तक। डाल दो तलवारें-ढाल। फेंक दो तीर-तरकश। टेक दो

घुटने। बोलो, महाराज चन्द्रदीप्ति की जय।···हटो···हटो···क्या? तो ये लो·····

(चाबुकों से पीटने की आवाज, घोड़े की दौड़ का स्वर···कोलाहल ···कोलाहल। कोलाहल धीरे-धीरे शान्त···और उसी में से उठते अस्पष्ट मंत्रों का उच्चारण—'ओं·····स्वाहा')

पुरोहितगण : ओं·····स्वाहा। ओं·····स्वाहा।

सेनापति : महाराजाधिराज चन्द्रदीप्ति की जय। दो हजार गाँव और अपने अधीन हुए। महाराज सुशोभित हों सम्राट् पद पर। महारानी सुनंदिनी की जय!···आरती उतारो जगमग!···ये आरती बढ़ाए महाराज के प्रभुत्व को, शत-शत गुना। बोलो, रानी सुनंदिनी की जय।

पुरोहित : दीर्घायु हों महाराज और महारानी सुनंदिनी। इस पवित्र यज्ञ की पूर्ण आहुति के लिए तत्पर हों सारे नगर-नागरिक, स्वजन-बन्धु। ध्यान देकर सुनो! हमने—धर्म के व्यवस्थापकों ने, आप सबके मंगल हेतु और महाराज चन्द्रदीप्ति की आयु की वृद्धि के लिए विजयी अश्व को भाले-छुरियों से घायल कर, धार्मिक विधि के अनुसार उसके प्राणान्त कराने का आदेश दे दिया है। हम उस विजेता अश्व पर विजय पाकर अपनी महत्ता और राज की महत्ता की पताका फहराने को एकत्र हुए हैं। आप धर्मप्राण जन हवन में आहुति देंगे उस मूल्यवान चर्बी की जो विजेता अश्व के शरीर से प्राप्त की गयी है। इस प्रकार मनुष्य का बल, पौरुष और सामर्थ्य स्थापित होंगे। वह चर्बी उष्ण रहते-रहते सोने के पात्रों में भर एक सौ एक मुख्य दास-दासियों द्वारा चाँदी की पालकी में रख कर लायी जा रही है।

(बौड़ कर आते घोड़े की पदचाप। एक संदेश-वाहक का प्रवेश)

संदेश-वाहक : (जोर की आवाज में) महाराज, स्वामिनी! अनर्थ हो गया।

(स्वाहा···स्वाहा की ध्वनियाँ एकदम शान्त)

चन्द्रदीप्ति : क्या हुआ संजय? शीघ्र बोलो।

संजय : महाराज! यज्ञ में विजयी अश्व को वे लोग भगा कर ले गये···

चन्द्रदीप्ति : **(दबी-सी किन्तु धीर-गम्भीर आवाज में)** ले गये···अच्छा हुआ। कौन ले गये?···कोई भी हों उन्होंने मुझे बहुत बड़ी यातना से बचा लिया।

पुरोहित : (**क्रोधित**) महाराज-महाराज···! ···क्या कह रहे हैं आप ? यज्ञ की पूर्णाहुति अब कैसे होगी ?···किसने किया यह दुःसाहस ? (**क्रोध, आवेश**) और राजन् ! आप···आप···कह रहे हैं कि अश्व को ले गये यह अच्छा हुआ। ···क्षमा करें महाराज ! शूरवीरों के मुख से यह कायरता के शब्द शोभा नहीं देते। महान् विघ्न हुआ है यज्ञ में। इसका फल पूरी प्रजा के लिए अमंगलकारी होगा।

(मंच पर धीरे-धीरे अन्धेरा···राजा, पुरोहित आदि का प्रस्थान, केवल रह जाती है जनता—भीड़। जनता का शोर।)

एक : अमंगल···हाय ! ···क्या होगा अब ! ···

दूसरा : हमारा अमंगल क्यों होगा।

पहला : हाँ, हमारा अमंगल क्यों होगा ? ···राजा के यज्ञ में विघ्न हुआ है। वह न होंगे सम्राट्, तो न हों···हमें क्या ?

तीसरा : अरे पापी, कैसी बात करता है ? इतना बड़ा यज्ञ होना था। अरे, उस जीतने वाले घोड़े के साथ और भी तो कितने घोड़े, हिरन और बैलों की आहुति हो जाती। उनकी चीख-पुकार और छटपटाहट देख कर कितना मनोरंजन होता—जन्म भर याद रहता कि हम भी मानुष होकर जनमें हैं इन जानवरों को पूरा वश में करने वाले।

चौथा : हाय ! ···हाय···कैसा पत्थर है···तू मानुष कहता है अपने को ? मुझे तो तेरी बात सुन कर मूर्च्छा आने को हो रही है···जी मितला रहा है। हे राम ! हे शिव ! कैसा लोहे का कलेजा हो गया है इन धर्म के अंधों का। मैं तो इस नगरी में नहीं रह सकूँगा।

पाँचवाँ : अरे तुम तो क्या, महाराज चन्द्रदीप्ति और रानी सुनन्दा भी इस नगर को छोड़ कर जा रहे हैं। मेरे भानजे का एक मित्र गुप्तचर है···बस, मुझे तो इस सारे रहस्य का पहले ही भान था। मैं इसलिए चुप था कि देखूँ क्या होता है।

पहला : क्या ? राजपाट, सब छोड़ रहे हैं ? लगता है कि महाराज और महारानी के सहयोग से ही यज्ञ के घोड़े को किसी सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया है। भइया ! खेत-खलिहानों में फसल न उगे तो···कुम्हार का चक्का चलते-चलते रुक जाय तो···बारिश न हो तो···जहाँ कोई विघ्न-बाधा आयी कि बिचारे मूक पशुओं को खट से काट कर उनकी बलि दे दी जाती है। मेरा तो रोम-रोम काँप उठता है यह काण्ड देख कर। मैं तो अपने परिवार को

लेकर यहाँ से निकल जाऊँगा। जा बसूँगा गंगा के उस पार वैशाली के पास गाँव में।

दूसरा : कुण्डपुर में ? राजा सिद्धारथ के राज में ? ···मैं भी चलूँगा तेरे साथ।

(बैलगाड़ी हाँकने की आवाज—चरमर-चरमर पहियों की आवाज, नर-नारियों का रंग-बिरंगे वस्त्रों में प्रवेश और गाना)

चमकी अंजुरिया वैशाली के देस,
बसहिं वहीं हम मानुसवा के भेस।
अरे ! सुनब वहाँ हम पंछी को रव-गान,
अपना हिय, सो पसु-पंछी में प्रान ॥
चमकी अंजुरिया·····

आठवाँ दृश्य

(बटुक का प्रवेश)

बटुक : (स्वगत) अरे मैं बटुक, निरा मूर्ख—भला क्या देख रहा हूँ यहाँ राज-भवन की अटारी पर चढ़ कर। देखने आया था कि कहीं राजकुमार वर्धमान संध्या समय अकेले न बैठे हों यहाँ—और देखने लगा धूल उड़ाती बैलगाड़ियों और रथों को जो दक्षिण-पश्चिम दिशा से आ रही हैं।··· बैलों के गले में घण्टियों की टुनटुन कैसी मीठी लग रही है।

(एला का प्रवेश)

एला : ए भद्र-साधु बटुक ! क्या देख रहे हो उचक-उचक कर···अटारी पर से ? कुमार नंदिवर्धन प्रतीक्षा कर रहे हैं तुम्हारी, महाराज भी उत्सुक हैं जानने को कि कुमार कहाँ हैं ?

बटुक : देख-देख एला ! ···देख, वह रहे कुमार वर्धमान—नदी किनारे टहलते दिखाई दे रहे थे अभी। और अब देख···इधर आ···बैल-गाड़ी में आते यात्रियों के बीच में खड़े दिखाई दे रहे हैं। भला उस भीड़ में कुमार का होना—यह कैसे कहूँ जाकर महाराज से ? जा, एला, तू ही जा। महाराज भेजें अश्वारोहियों को कुमार को बुलाने ···मैं उन पर से नेत्र नहीं उठा पाऊँगा। कैसा बाँध लेते हैं वह तन-मन को ! विचित्र आकर्षण है कुमार में। यह कैसा चुम्बक है उनके व्यक्तित्व में !

(पार्श्व से जयघोष के स्वर : 'राजा सिद्धार्थ की जय' 'गणतंत्र राज की जय' 'श्रमण धर्म की जय' 'भगवान पार्श्वनाथ की जय' अर्हतों की जय' 'अहिंसा धर्म की जय')

बटुक : अरे रे रे ! यह तो कुमार चल पड़े हैं यात्रियों की भीड़ के साथ। भीड़ तो आ लगी है राज-भवन के द्वार। चलूं, देखूं क्या हो रहा है वहां ?

(बटुक का बाहर जाना। राजद्वार पर महाराज को पुकारती भीड़ का प्रवेश)

भीड़ : राजा सिद्धार्थ की जय। पार्श्वनाथ भगवान की जय। हम सब इस राज्य में बसने आये हैं महाराज। निहत्थे दासों पर अत्याचार···

अन्य स्वर : मूक पशुओं की बलि···

और स्वर : सामन्तों का गरीबों और शूद्रों पर अत्याचार···अब नहीं सहा जाता। शरण दें महाराज ! कुमार वर्धमान हमारे दुःख से अति पीड़ित हैं। उन्हें हमने विस्तार से सब बताया है। कुमार···अरे,··· कहां गये कुमार···अभी तो यहीं थे···

(भीड़ के आंदोलित स्वर सुनकर राजा सिद्धार्थ और सभागणों का प्रवेश)

सिद्धार्थ : स्वागत-स्वागत भद्रजन ! आपकी समस्या और मनःस्थिति से अवगत हुआ। आपका समुचित प्रबन्ध अभी हो जायेगा। मैं प्रयत्न करता हूँ कि आपकी देखभाल का, निवास-स्थान और खाने-पीने का प्रबन्ध हो। रात्रि में विश्राम के बाद आप स्वस्थ-मन हो जायें। कल परिषद के सम्मुख आपकी समस्या पर पूर्ण रूप से विचार होगा।

(महाराज सिद्धार्थ की जय बोलती हुई भीड़ का प्रस्थान)

(बटुक का प्रवेश)

सिद्धार्थ : प्रिय बटुक ! कुमार महावीर कहां चले गये ? देखो क्या इधर ही आ रहे हैं दोनों भाई ? **(नंदिवर्धन का प्रवेश)** ओहो, ये तो बस नंदिवर्धन ही है···। बटुक ! महारानी को सूचना दे दो। वह बहुत व्याकुल थीं।

बटुक : अभी महाराज। **(बटुक का प्रस्थान)**

सिद्धार्थ : बेटा नंदिवर्धन ! कहां थे तुम ! अस्त होते सूर्य की गोधूलि बेला में मन यों ही उदास हो जाता है। ज्यों पक्षी व्याकुल हो अपने नीड़ की ओर उड़ान भरते हैं अपने कोमल-प्राण शिशुओं को अंक में भरने को, वैसे ही मेरा मन अपने प्राणांशों को निकटता में समेटने को आर्द्र हो जाता है।

(त्रिशला का प्रवेश)

नंदिवर्धन : (प्रणाम कर) मां ! पिताजी ! वर्धमान की विनीत होने की अपार क्षमता उसे आपके सम्मुख निरुत्तर ही रखेगी। इसीलिए मैं ही अपने अनुज के विषय में आपके सम्मुख बोलने का साहस कर रहा हूँ। सांसारिक मोह-माया के बन्धनों से वर्धमान की जो स्वाभाविक विरक्ति है, उसे आप और माँ से अधिक कोई नहीं पहचानता। इस दिव्य व्यक्तित्व के प्रति समादर भाव होते हुए भी, हम अधीर हो उठते हैं उसकी इस अलगाव की प्रवृत्ति से। मेरा सुझाव है कि विवाह का प्रेममय मंगल-विधान वर्धमान की कोमल भावनाओं को अवश्य स्पर्श करेगा।

त्रिशला : बेटा नंदिवर्धन ! यह तो तूने मेरे अंतरंग की भावना को वाणी दे दी। वर्धमान की असाधारण प्रतिभा और प्रवृत्तियों पर मैं मुग्धा माँ इस वैवाहिक बन्धन को सामान्य जन के संदर्भ में स्वाभाविक और अनुकूल समझ कर भी अपने इस बेटे के लिये कहने में संकोच कर रही थी।

सिद्धार्थ : क्षमा करना प्रिये ! तुम माँ-बेटे की बातों में मैं अपनी भावना का परिक्षेपण कर रहा हूँ। पर मुझे आज की यह बेला कुछ अनकहे संदेशों से पूरित प्रतीत हो रही है। सहसा अन्य राज्य से आये व्याकुल यात्रियों का इस नगर में प्रवेश, भगवान पार्श्वनाथ के जयकारों की वातावरण में गूँज, और उस गूँज में व्याकुल प्राणों का अस्फुट आर्तनाद, महावीर को लौकिक बन्धनों से बाँध रखने की हमारी आंतरिक तीव्र विह्वलता, और साथ ही, एक विचित्र प्रकार की अन्यमनस्कता का बोध !

त्रिशला : प्राणनाथ ! नंदिवर्धन ने मेरे अन्तर के एक परोक्ष धरातल का उद्घाटन किया। और आपने एक अन्य मार्मिक अन्तःस्वर को झंकार दी। वर्धमान के प्रति माँ की भावना से परे लोकोत्तर एक और भावना है, वह मुझे सचेतन स्तर पर ज्ञात नहीं हो पाती थी।

नंदिवर्धन : माँ हम अपनी बातों में बह गये। और वर्धमान कहाँ हैं पता नहीं लगाया। आप और पिताजी इस दुविधा-जनक मानसिक स्थिति से मुक्त हों, यह मेरी प्रार्थना है। वर्धमान के भविष्य की रेखाएँ किस पथ पर अंकित होंगी इस चिन्ता का भार मैं शिरोधार्य करता हूँ। आप विश्राम करें, बहुत थके लग रहे हैं आप।

त्रिशला : बेटा ! वास्तव में ही अब विश्राम का समय आ गया। महाराज को और मुझे अब शीघ्र ही संसार-बंधनों से मुक्त होना है। और, इस शासन एवं परिवार-व्यवस्था का भार तुम दोनों भाईयों को ही वहन करना है। अब तो यही कामना है कि जिस प्रकार जीवन-संगिनी के रूप में तुम्हें ज्येष्ठा प्राप्त हुई है, उसी प्रकार वर्धमान भी···यदि···

सिद्धार्थ : **(बीच ही में)** विदेहदत्ते ! विवाह के विषय में वर्धमान को किसी विवशता की स्थिति में डालना उचित नहीं लगता। मन कहता है कि हमारा सबका प्यार अथवा वैवाहिक सम्बन्ध—कोई वर्धमान को मोह-बंधन में नहीं बाँध सकेंगे। विवाह हो भी जायेगा तो क्या वह आजीवन उसमें बँधा रह सकेगा ?

त्रिशला : आपकी इस दूरगत दृष्टि का अभिनन्दन करती हूँ स्वामी ! किंतु क्या इस आधार पर प्रयत्न करना छोड़ दें ? नंदिवर्धन ! तुम क्या कहते हो ?

नंदिवर्धन : मेरा विचार आपके निर्देशन के अनुकूल ही होगा। इस संबंध में कलिंग-नरेश जितशत्रु की पुत्री यशोदा के विवाह का प्रस्ताव प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है। आप चाहें, और यदि पिताजी इस प्रस्ताव की स्वीकृति दें तो···

सिद्धार्थ : बेटा नंदिवर्धन ! बिना वर्धमान की अनुमति के हमारी स्वीकृति देना उचित न होगा। और कुमारी यशोदा की अनुमति भी समझ लेनी आवश्यक है।

त्रिशला : हाँ महाराज ! ऐसी स्थिति में यही उत्तम होगा कि हम वर्धमान और यशोदा को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता दें कि वे दोनों इस प्रस्ताव पर नितान्त अपने ढंग से विचार करें।

सिद्धार्थ : पर प्रिये ! यह विवाह यदि लौकिक रीति के अनुसार हुआ भी, तब भी बन्धन-रूप नहीं होगा, यह निश्चित है। वर्धमान असाधारण है। उसके जीवन की कोई भी घटना साधारण स्तर पर घटित नहीं होगी। बेटा नंदिवर्धन ! ऐसा लगता है जैसे आज हृदय से उठते ये स्वर, संध्या में विलीन न होकर पूर्ण वातावरण को आच्छादित कर रहे हैं। कल प्रातः परिषद् की सभा विशेष महत्त्व की होगी। तुम्हें अपने कर्त्तव्य-भार को वहन करने के लिए तैयार रहना है। कुण्डपुर का भार तुम्हें सौंपना चाहता हूँ।

नंदिवर्धन : क्या कह रहे हैं पिताजी ! कल ही···इतना महत्त्वपूर्ण निश्चय इसी क्षण···यह कैसे होगा ? यह नहीं···

सिद्धार्थ : बेटा ! महत्त्वपूर्ण निश्चयों के काल-अंश सिमिट कर एक ही क्षण में केन्द्रीभूत हो आते हैं। वह क्षण आ गया—राजकुमार !

त्रिशला : मेरे अंतस् में आपके स्पन्दन प्रतिध्वनित हैं, महाराज !···बेटा नंदिवर्धन ! भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में अपनी श्रद्धा समर्पण कर हम दोनों एक ही राह के राही होने को उन्मुख हैं।

पार्श्व से स्वर : उठिठये नो पमायए

एक अन्य स्वर : नश्वर शरीरादि के मोह-ममता रूपी प्रमाद से, अनादि मोह-निद्रा से उठो ! जागो ! और अपने सहजात्म स्वभाव में जगे रहो, उसे स्मरण रखो।

पार्श्व-स्वर-१ : समयं गोयम मा पमायए। जे एगं जाणई ते सव्वं जाणइ।

पार्श्व-स्वर-२ : हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद न कर। जो एक (शुद्ध आत्म-स्वरूप) को जानता है, वह अन्य सबको जानता है।

(सब चकित हो दिव्य-ध्वनि को सुनते हैं)

सिद्धार्थ : ये दिव्य-ध्वनि ! महावीर का स्वर है या मेरे अंतर का। बेटा ! वर्धमान को बुलाओ—क्षण आ पहुँचा।

नंदिवर्धन : पिताजी ! पिताजी ! यह स्वप्न है या सत्य ? मैं—अकेला ? नहीं···नहीं···

सिद्धार्थ : बेटा नंदिवर्धन ! वर्धमान को शीघ्र बुलाओ। बेटा ! तुम लोकतंत्र की चिंता से मुझे मुक्त करने में पूर्ण समर्थ हो। मैं कितना भाग्य-वान हूँ। और महावीर—तीर्थंकरत्व उसके मुख पर दीप्त है। उस मुख से झरती किरनों ने मोहान्धकार दूर कर दिया है। अब मैं और तेरी माँ भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में समर्पित हैं।

(पार्श्व से स्वर, जिसमें सिद्धार्थ और त्रिशला के स्वर जुड़ जाते हैं)

पार्श्व-स्वर : चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—
अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

(धीरे धीरे सब का प्रस्थान। जय जय ध्वनि के साथ मंच पर अन्धकार)

नौवां दृश्य

(प्रभाती की धुन में वाद्य-अंतराल। अगला प्रभात प्रकट होता है)

पार्श्व-स्वर : धर्म-तीर्थ-गामी सिद्धार्थ-त्रिशला की जय। जय हो, महाराज नंदिवर्धन की जय, कुमार वर्धमान की जय। कुण्डपुर की जय। वैशाली गणतंत्र की जय।

पार्श्व-स्वर : (घोषक के) महापुण्यशाली राजा सिद्धार्थ और माँ त्रिशला ने लौकिक संसार से विदा ले अर्हत् धर्म का पालन किया है। इस सुन्दर प्रभात बेला से कुण्डपुर का गणतंत्रीय शासन, महाराज नंदिवर्धन द्वारा शोभायमान है।

(मंच पर प्रकाश। नंदिवर्धन और महामंत्री का प्रवेश बातचीत करते हुए)

महामंत्री : महाराज ! स्वस्थ मन हों। घटनाएँ तीव्रता से समक्ष आ रही हैं। अन्य नगर-गाँवों से यात्रियों की भीड़ बढ़ रही है। द्वार पर आपके आदेश की प्रतीक्षा है।

नंदिवर्धन : (उदास स्वर में चिंतित) महामंत्री जी ! कल पिताजी और माँ के दीक्षित होते ही वर्धमान ने अपनी सारी सम्पत्ति जन-गण में वितरित करने की घोषणा की है। मुख्य कोषाध्यक्ष से कहिए कि वह सब द्रव्य परिषद् के हाथों सौंप दें। परिषद् जिस प्रकार चाहे, उसे दूर नगरों से आये लोगों को बसाने के काम में लाये। योग्यता, दक्षता और रुचि के अनुसार वे सब कार्यरत हों। इस विषय में उनके गृह-राज्यों को भी सूचना भेज दें।

महामंत्री : महाराज ! आपका आदेश परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत हो जायेगा। सदस्यों के मतानुसार आज्ञा-पालन अवश्य हो जायेगी। मैं अभी यह सूचना यात्रियों को दे आता हूँ।···महाराज ! यह बटुक कुछ कहना चाहता है।

(बटुक का प्रवेश)

नंदिवर्धन : ओह ! बटुक इधर आओ—दूर क्यों खड़े हो ? क्या कहना है ?

बटुक : राजकुमार ! नहीं नहीं, महाराज ! कैसे कहूँ ? जो अपनी आँखों से देखा। कुमार वर्धमान ने अभी-अभी अपने सारे बहुमूल्य बिछावन, ओढ़न, केवल दो-चार वस्त्रों आभूषणों को छोड़कर और सब कुछ जनता में वितरित कर दिया।

नंदिवर्धन : क्या ? सब वितरण कर दिया ! माँ और पिताजी ने वैराग्य ले लिया और महावीर सब त्याग रहा है ! क्या सांसारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह मुझ अकेले के कंधों पर आ पड़ा ? मैं अत्यन्त विचलित हूँ इस समाचार से। बिना वर्धमान को साथ लिये व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आधारित इस गणतंत्र की आत्मा को कैसे पाऊँगा मैं ? वह भले ही मेरा अनुज है। पर, उसकी हंस की-सी क्षीर-नीर विवेक-बुद्धि, उसका-सा मन-वचन-काय का यौगिक और संयमित उपयोग, सागर-सा विशाल गम्भीर धैर्य कहाँ पाऊँगा मैं ? कैसे चलेगा यह शासन बिना उसके नायक बने ?

बटुक : महाराज ! मैं बहुत मूर्ख हूँ जो ऐसा समाचार लाया कि आपको इतना दुःख हुआ। पर बिना कहे रह जाना अधिक मूर्खता होती सम्भवतया।...और बताऊँ महाराज !

नंदिवर्धन : अवश्य बटुक ! तुम्हें पूरी-पूरी छूट है कहने की।

बटुक : तो सुनिये महाराज ! कुमार वर्धमान ने कल रात से ही नियम ले लिये हैं कि वे जमीन पर सोयेंगे। दिन में केवल एक बार और वह भी अपने निमित्त से न बने भोजन को सूर्यास्त से पहले ग्रहण करेंगे। किसी प्रकार के शृंगार-प्रसाधन को उपयोग में नहीं लायेंगे। बोलना, नितान्त आवश्यक ही हो तो; अन्यथा मौन हैं। और, अधिक से अधिक एकान्त में समय बिता रहे हैं।

नंदिवर्धन : प्रिय बटुक ! भावी वास्तविकता सामने आ गयी है। यथार्थ को कब तक नकारते रहें हम सब। महावीर का घर से यह नाममात्र का सम्बन्ध भी दो वर्ष का है। दो वर्ष पश्चात् वह प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा, यह अनुमति वह मुझ से बहुत पहले ले चुका है। बन्धु ! हमें भी संयम, विवेक और दृढ़-निश्चयों में परिपक्व होने की ओर अग्रसर होना है।

बटुक : स्वामी ! यह बुद्धिहीन तुच्छ सेवक आपकी बतायी राह पर चलेगा।

दसवाँ दृश्य

(लौकान्तिक देवों का प्रवेश गाते हुए)

लौकान्तिक देव : जय जय खत्तियवरवसभ बुज्झहि भगवं।
सव्व जगज्जीवहियं अरहंतित्थं पव्वत्तेहि ॥

हे क्षत्रिय-वर वृषभ ! आपकी जय हो। अब आप दीक्षा ग्रहण करें और समस्त प्राणियों के लिए हितकर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन करें।

(मंच पर—छायाचित्र उभरते हैं)

वाचक (पुरुष) : दो वर्ष बाद लोकान्तर से आये देवत्व के स्वरों ने वर्धमान को सम्बोधित किया और उनकी वैराग्य-भावना क्रियाशील हो उठी।

(गृह त्याग कर, महाभिनिष्क्रमण को प्रस्तुत हैं वर्धमान)

(छायाचित्र)

वाचक (नारी) : आत्मा में प्रस्फुटित सूक्ष्म ज्योति से जगमग चन्द्रप्रभा पालकी पर आरुढ़ हुए वर्धमान वन-प्रस्थान को—

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : उस पालकी के वाहक हैं ऊर्ध्व लोक के निवासी देव; चंवर ढुला रही हैं देवियाँ, पालकी के पीछे-पीछे चल रहे हैं राजा नंदिवर्धन, राजगृह के सब बन्धु-बांधव, कुण्डपुर के नगर-निवासी—

(पालकी छायाचित्र में, शेष सब मंच पर)

वाचक (नारी) : वर्धमान पहुँचे हैं दिव्य आलोक से मंडित ज्ञातृखण्ड उपवन में, जो कुण्डपुर के समीप ही है।

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : अशोक वृक्ष के नीचे पत्थर की स्वच्छ शिला है। वर्धमान पालकी से उतर कर उसी शिला पर जा बैठे हैं।

(छायाचित्र)

वाचक (नारी) : दीक्षा-ग्रहण का क्षण आ गया। वर्धमान ने एक-एक करके सब वस्त्र-आभूषण उतार दिये। पाँच मुट्ठियों से भरकर सारे केशों का लुंचन किया। दो दिन के निर्जल उपवास से स्वच्छ हुए कुन्दन शरीर से दिव्य रश्मियों की आभा चारों ओर बिखर गयी।

(छायाचित्र)

वाचक (पुरुष) : हेमन्त ऋतु में मंगसिर मास की कृष्णा दशमी का सुव्रत दिवस, विजय नामक मुहूर्त, चौथा प्रहर, और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र···। प्रभु ने देव और मनुष्यों की विशाल परिषद् के सामने सिद्धों को नमस्कार करते हुए कहा—

पार्श्व से महावीर-वाणी (गूँज) :

सव्वं में अकरणिज्जं पावकम्मं।

वाचक : अब से मेरे लिए सब पाप-कर्म अकरणीय हैं।

पार्श्व से (गूंज): करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।

वाचक : आज से त्याग करता हूँ मन-वचन-काय से उन कार्यों का जो हिंसामय हैं। हिंसा न करूँगा, न करवाऊँगा न अनुमोदन करूँगा।

सामूहिक स्वर : धन्य—धन्य—धन्य! प्रभु!

श्रावक : (**पूजा गायन**)
मंगसिर असित मनोहर दशमी ता दिन तप आचरना।
नृप-कुमार घर पारन कीनो, मैं पूजूं तुम चरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना॥

नंदिवर्धन : (**मंच पर**) उपस्थित देवगण एवं प्रियजन! हम विदा लें। प्रस्थान करें अपने स्थान को। विश्व-कल्याणकारी वर्धमान की जय—
निग्गंठ पुत्त—नात-पुत्त—महावीर की जय!
भगवान पार्श्वनाथ की जय…।

(**'जय' शब्द में सामूहिक-स्वर**)

ग्यारहवाँ दृश्य

(**मंच पर प्रकाश—निताशा और रीना का प्रवेश**)

निताशा : रीना! तूने मुझे तपस्वी वर्धमान के चरणों तक पहुँचा दिया। पर एक बात बारबार मन में उठती है कि वर्धमान ने घर क्यों छोड़ा? वे सब कुछ त्याग कर निर्जन वन में तपस्या करने क्यों चले गये? अगर उन्हें उस काल की सामाजिक या राजनैतिक व्यवस्था मानव के हित की नहीं लगती थी तो क्या वे परिवर्तित व्यवस्था की स्थापना शासक और नायक बनकर नहीं कर सकते थे?

रीना : निताशा! महावीर के सामने प्रश्न तात्कालिक सुख-शान्ति की स्थापना का नहीं बल्कि मूलभूत समस्याओं के शाश्वत समाधान का था। केवल शासन और सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन से क्या मनुष्य चिर आनन्द और निराकुलता प्राप्त कर सकता है? साधारण मनुष्य के अन्तरंग की व्यवस्था का परिवर्तन किये बिना, चिर आनन्द की स्थिति कल्पित नहीं हो सकती। और, मनुष्य के अंतस् के विषय की खोज, साधारण परिस्थितियों में हो ही नहीं सकती।

अंतस् में उतरने के लिए तीर्थंकर यानी तारण-तरण होने के जन्म-जात गुण, घोर तपश्चरण की क्षमता और तपस्या के अनुभव से ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य और फिर उस क्षमता और ज्ञान की उपलब्धियों को प्राणी मात्र के कल्याण हेतु उन तक पहुँचा सकने की वह वाणी जो मूक पशु-पक्षियों से लेकर धुरंधर योगियों और धनुर्धारी राजाओं, महाराजाओं और साधारण जन—सबकी समझ में आये—आवश्यक तत्त्व हैं। वर्धमान ने तापस रूप धारण किया ज्ञातृखण्ड वन में। रात्रि से पहले ही पहले, वे जा पहुँचे कर्मारग्राम में जहाँ वे अचल ध्यानस्थ हैं आत्मा की गहराई में डूबे हुए, आत्मा से भिन्न जगत् से निरपेक्ष।

(भगवान का छायाचित्र ध्यानावस्था में)

निताशा : काश ! मैं उस युग में जनमी होती और प्रभु के चरणों के पग से कांटे-कंकड़ चुगती, उनकी सेविका बन साथ रहती।

रीना : तेरी इस भाव-भक्ति की भरपूर प्रशंसा करती हूँ। पर पगली ! जिस महायोगी ने पूरा राजपाट, घर-परिवार और सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर, स्वयं में समाधिस्थ होने के लिए निर्जन वनों का एकान्त, ऊबड़-खाबड़ धरती पर गमन, जीव-जन्तुओं का आक्रमण और दंश, गर्मी-सर्दी और वर्षा-आंधी के थपेड़े सहने का व्रत लिया, वह तुझे अपनी सेविका बनने का अवसर ही कब देता ? उनके लिए तो वह उपसर्ग ही होता—साधना में बाधक। उन्होंने अपनी साढ़े बारह वर्ष की तपस्या में जिन जिन उपसर्गों को झेलकर, अनुभूति का साक्षात् किया और स्वयं पर प्रयोग कर जिस ज्ञान की प्राप्ति की, वह हम जैसे साधारण मनुष्यों को चमत्कार लग सकते हैं, पर भगवान का जीवन दर्शाता है कि मनुष्य में निहित क्षमता के पूर्ण विकास की दृष्टि के प्रकाश में, वे सब सम्भव हैं। देख ! कर्मारग्राम में पहुँच।

(मंच पर अंधकार। निताशा और रीना का प्रस्थान)

बारहवाँ दृश्य

(मंच पर प्रकाश। एक ग्वाले का प्रवेश)

ग्वाला : अरे वाह, यह मेरा कर्मार-ग्राम भी क्या है जिसके घने जंगल तक में कल एक भला आदमी दिखाई दे गया था। और वाहरे मेरी अक्कल, कि मुझे भी सूझा कि इसके हवाले कर दूँ अपने बलधर-हलधर को कि वे घास खायें जी भर के···और मैं दोहूँ दूध थन-धर के।···अरे वाह, मैं तो कविता बोल गया। क्या कहा मैंने···'वे घास खायें जी भरके, और मैं दोहूँ दूध थन-धर के।' छीः छीः, ग्वाला हूँ और रस ले रहा हूँ कविता का ! डूब गयी बुद्धि मेरी ! भूल गया कि रात भर भटका हूँ इन जंगलों में उन बैलों को ढूंढ़ता जो उस भले आदमी के पास छोड़ गया था और साँझ को जब दूध दोहकर आया था तो उसके पास नहीं मिले थे ! मेरा चित्त बौरा गया है, कविता की धुन चित्त में उतरी है—भला एक बार साँझ को उस गुम-सुम बाबा से पूछता तो सही कि मेरे बैल कहाँ हैं।···हुआ सबेरा और अब फिर आ पहुँचा बैल ढूंढ़ने और बैल ढूंढते-ढूंढते फिर उतर गया कविता में। चलूँ जल्दी से—अपने बैलों को संभालूँ, उस मूरत के पास से। अरे ओ हलधर-बलधर ! **(चु चु चु की आवाज, (जैसे चुमकार से बैलों को बुला रहा हो) करता हुआ अन्दर चला जाता है। छायाचित्र—महावीर ध्यानस्थ हैं—दो बैल उनके दोनों चरणों से लगे बैठे हैं)**

पार्श्व से ग्वाले के स्वर : अरे ! परगट हो गये इस मूरत के पास। कैसे मगन बैठे हैं इसके पाँवों से लगे ! —अरे अब तो बोल, कहाँ छुपा दिया था मेरे बैलों को रातभर ? क्या समझा था तूने कि रातभर इनको छिपा रखेगा तो यह तेरे हाथ लग जायेंगे ?—बोल तो सही। —गूँगा भी है।

(छायाचित्र अदृश्य हो जाता है और ग्वाला बड़बड़ाता मंच पर आता है)

ग्वाला : **(रस्सी हाथ में ले, स्वगत)** अब इस रस्सी से पिटेगा तो बच्चू की अक्कल ठिकाने लगेगी। ले बंध इस रस्सी से—ले चलूँ कोतवाल के पास। **(बाँधने को उद्यत)** हें यह क्या ? मेरा कंठ सूख गया चीखते-चीखते और हाथ दुख गये रस्सी को कसते-कसते। अब तो मेरे हाथ उठते तक नहीं। कौन है ये मूरत ?—

यह मुझे क्या हो रहा है ? हाय मैंने यह क्या किया ?—अंधा हो गया बैलों के मारे—हायरे···वह हलधर और बलधर, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वे लोट गये थे उसके पाँव में। क्या वह कोई तपस्वी है ?—ओह ! मैं निराधम, बुद्धि-भ्रष्ट—समझा नहीं कि यह मौन साधे अचल ध्यान में मगन साधु हैं। हाय ! क्या करूँ मैं ? भगवन् ! —भगवन् ! रक्षा करो मेरी। (प्रस्थान)

(छायाचित्र भगवान के—विभिन्न मुद्राओं में)

वाचक : वर्धमान पन्द्रह-पन्द्रह दिन का निर्जल उपवास रखते—कई दिन और रात लगातार कायोत्सर्ग तप और साधना में लीन रहते। पन्द्रह दिन के बाद···एक बार समीप वाले गाँव या नगर में आहार को जाते और वह भी एक विशेष प्रतिज्ञा को मन में धारण कर कि वैसा संयोग होगा, तो आहार लेंगे, अन्यथा नहीं। वे कर्मारग्राम से कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे, वहाँ से मौराक, मौराक से दूइज्जंतग पाषंडस्थों के आश्रम में। और वहाँ से अस्थिक ग्राम के वनों में—अस्थिक ग्राम से सुवर्ण-बालुका और रूप्य-बालुका नदी पार कर वे पहुँचे कनखल आश्रमपद में।···वर्धमान चले जा रहे थे तप-यात्रा पर—वे उत्तर वाचाला से सेयंविया—सेयंविया से सुरभिपुर। वहाँ से राजगृह, थूणाक सन्निवेश, और फिर नालंदा। ···यात्रा पर यात्रा, तपस्या और तपस्या में तल्लीन। ध्यान और ध्यान। चिन्तन और चिन्तन—मनन ही मनन, मौन—मौन।

(श्रावकों की भीड़ मंच पर आती हुई प्रवेश करती है)

श्रावक (गायन): ते गुरु मेरे उर बसो, जे भव जलधि जिहाज।
आप तिरें, पर तारहिं ऐसे श्री मुनिराज॥
ऐसे श्री मुनिराज·····।
जेठ तपें रवि आकरो, सूखे सरवरनीर।
शैल शिखर मुनि तप तपें, दाझें नगन शरीर॥
ते गुरु मेरे उर बसो।

(श्रावकों का प्रस्थान, छायाचित्र पट पर उभर आते हैं)

वाचक : और ये चल पड़े हैं वर्धमान। ···रात्रि में ध्यान, दिन में एक-एक पग सावधानी से रखते प्रस्थान। आनन पर आभा-मण्डल लिये, शरीर से कान्तिमय दिव्यता बिखराते वे पहुँचे

चम्पा-पुरी में और वहाँ से कालाय सन्निवेश और फिर वहाँ से पत्तकालाय के खंडहरों में ध्यान-मग्न।—पत्तकालाय से प्रस्थान कर पहुँचे हैं कुमाराक सन्निवेश और वहाँ से चम्परमणीय उपवन में।

(कोलाहल के स्वर। कोलाहल करते कई व्यक्ति मंच पर आते हैं)

कई व्यक्ति : (क्रम से) पकड़ो—पकड़ो! वह रहा गुप्तचर—और उसका साथी। ले चलो इन्हें बाँध कर राजा के पास।—क्या मिले हैं चलती राह में। हा-हा-हा-हा, सारा दिन हो गया इन्हें ढूँढते-ढूँढते।

(गोशालक का प्रवेश, सिपाही उसे पकड़ने को आगे बढ़ते हैं)

गोशालक : अरे ये क्या करते हो? किसे पकड़ रहे हो? बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है क्या? जानते नहीं मैं कौन हूँ? मैं हूँ गोशालक, और वे हैं वर्धमान, कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ के पुत्र। आत्म-कल्याणी तपस्वी···ध्यान में मग्न हैं वे। खबरदार जो उन्हें या मुझे हाथ लगाया।

एक सिपाही : गोशालक? कौन गोशालक?

दूसरा सिपाही : अरे मूर्ख, तू नहीं जानता इन प्रसिद्ध भिक्षु गोशालक को? प्रणाम गोशालक भिक्षु!···आप वर्धमान के साथ कैसे?

गोशालक : (स्वगत) अब आये रास्ते पर। (प्रकट) अरे क्या पूछते हो—मैं वर्धमान के आत्मा और जीवन के ज्ञान से इतना प्रभावित हुआ हूँ कि अब मैं इनका शिष्य बनकर साथ-साथ घूमता हूँ। आया कुछ समझ में।—पर हे भगवान! इनकी सी घोर तपस्या—ओह! मैं तो कभी नहीं कर सकूँगा···कभी नहीं। इनकी अद्‌भुत क्षमता देख कर तो मैं विचलित हो जाता हूँ।

दूसरा सिपाही : क्षमा करें महापंडित गोशालक! अनजाने में घोर अपराध हो जाता।—पर इस सुनसान अंधेरे में—वह इस तरह नग्न!—अपरम्पार महिमा है!

(सबका प्रस्थान) (वाद्य ध्वनि)

वाचक : और अब वर्धमान पहुँचे हैं चम्पा में—पूस का महीना है—किटकिटाता जाड़ा, बादल घनघोर घिर आये हैं, आकाश में बिजली कड़क रही है। **(बारिश जोर जोर से होने की आवाज और बिजली की कड़क का दृश्य)**

(श्रावक गण मंच पर गाते हुए आते हैं)

श्रावक गण : ते गुरु मेरे उर बसो, जे भव जलधि जिहाज,
आप तिरें भव तारहिं, ऐसे श्री-मुनिराज।
पावस रैन डरावनी, बरसें जलधर धार।
तरुतल निवसें साहसी, बाजें झंझावार॥
बाजें झंझावार— बाजें झंझावार—

(गाते-गाते प्रस्थान)

(छायाचित्र में वर्धमान के चरण गमन करते हुए)

वाचक : पृष्ठ-चम्पा से कयंगला, जहाँ रहते थे दरिथेर पाषंडस्थ लोग। वहाँ से विहार कर गये श्रावस्ती को, और वहाँ से एक पेड़ के नीचे रात्रि-वास करके नंगला, नंगला से आवता गाँव और वहाँ से चौराक और कलंबुका सन्निवेश में और···ये क्या ?—**(जोर-जोर से चाबुक से पीटने की आवाज)**

(मेघ और कालहस्ती व उसके साथियों का प्रवेश)

मेघ : अरे वह मूर्ख जन ! कैसे हिम्मत की थी उसने यहाँ आने की ? जानता नहीं हमें ? इस बीहड़ जंगल में हम जैसे भयंकर मनुष्यों की गुफा है। हमारे नाम से काँपते हैं राजा, महाराजा। हम हैं मेघ और कालहस्ती। अब हम मुखिया नहीं कि भिखारियों को खिलायें-पिलायें। अब हम डाकू हैं डाकू। दे तो सकते नहीं अब हम कुछ भी उसे, पर हाय-हाय, कुछ ले भी तो नहीं सकते उससे। निपट नंगा। विकट हालत है।—पर हाथ बेचैन हैं कुछ करने को। आओ साथियो ! जरा हाथ ढीले किये जायें उस भिखारी पर— लगाओ दस-बीस। खड़े क्या देख रहे हो ?

(कुछ साथी पार्श्व की ओर जाते हैं। चाबुक से मारने की आवाज पार्श्व से)

कालहस्ती : पर यह लो ! वह तो न रोया है न चिल्लाया है। कुछ आनन्द ही नहीं आया मारपीट का। अरे, यह क्या ? मैंने तो न मारा न पीटा, पर मेरे हाथ सन्न हुए जा रहे हैं। अबे मेघ ! खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है ? दाब दे मेरे हाथों को—इन्हें जरा गरमा।

मेघ : अरे ओ कालहस्ती, उन्माद छोड़। पहचान तो अधम ! कि हम किसके साथ उपद्रव करने की ठान रहे हैं। डाकू तो मैं भी हूँ पर बुद्धि-विवेक जाग उठा है उस तपस्वी के दर्शनों से। आँखें खोल

और पहचान उन्हें—वह साधारण व्यक्ति नहीं है—सच कहता हूँ लोट जा उनके चरणों में, प्रणाम कर प्रभु को—**(छायाचित्र में स्थित भगवान को नमस्कार करते मेघ और कालहस्ती का प्रस्थान)**

वाचक : प्रभु वर्धमान ने विचारा कि जितने उपसर्गों को झेला है, उससे कहीं उत्कट उपसर्ग झेलकर तपने का अवसर आये तो कर्मों की निर्जरा हो। मनुष्यों द्वारा दिये गये कष्ट और यातनाएँ भगवान की अचल अखण्ड मानस शिला से टकरा-टकरा कर चूर होती चली गयीं। प्रकृति की दुर्द्धर्ष और दुर्दम शक्तियाँ जैसे नयी चुनौतियाँ लेकर सामने आ खड़ी हुईं, उन्हें देखना था कि कहीं भय का हल्का सा भी कम्पन उत्पन्न हो जाये तो प्रकृति की व्यन्तरी सत्ता को अट्टहास करने का अवसर मिले।—हुँ, मनुष्य की आत्मशक्ति का दर्प ! उधर भगवान दो महीने का उपवास साधे आत्मा का अलख जगाये खड़े थे कि प्रकृति ने अपनी शक्ति तौलनी चाही। प्रकृति के दुर्दम रूप साकार उपस्थित हुए उपसर्ग देने को।

(ध्वनि-प्रभाव, आलोक-प्रपात एवं ताण्डव नृत्य द्वारा पैशाचिक अट्टहास, तुमुल झंझावात, शिलाएँ और चट्टानें टूटती हुईं, धरा फटती हुई, जल-प्रलय, बीभत्स चीत्कार, भयानक ध्वनियाँ—सांय सांय—हा हा हा—धड़ाम धड़ाम आदि।)

वाचक : पर भगवान निर्विकार, निश्चल, शान्त, अडिग।

(श्रावक वन्दना के स्वरों में गाते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं)

श्रावक : देव त्वमेव लोकेऽस्मिन्, वीर्यशाली जगद्-गुरुः।
वीराग्रणीर्महावीरो, महा-ध्यानी महातपाः॥
क्षमया भूसमो दक्षो, गंभीर इव सागरः।
स्वच्छाम्बुवत्प्रसन्नात्मा, कर्मारण्ये जगत्त्रये।
सन्मतिः सार्थकस्त्वं च परमात्मा महाबलः॥ **(प्रस्थान)**

वाचक : इस प्रकार १२ वर्षों तक घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते, और जिनत्व की ज्योति से अधिकाधिक जगमगाते, महावीर सिद्धारथपुर, वैशाली, सावत्थी, दृढ़भूमि, बालुका, सुयोग, सुच्छेत्ता, मलय, हस्तिशीर्ष, मिथिला, वाराणसी, भोगपुर, नंदिग्राम से होते हुए कौशाम्बी पहुँचे—कौशाम्बी महावीर की क्रान्तिकारी समाज-रचना और समाज-दर्शन की रंग-स्थली ! उनकी निराहार तपस्या की नयी कसौटी !

तेरहवाँ दृश्य

(कौशाम्बी नगर का दासों की बिक्री का बाजार। दो व्यक्ति बारू और मटकू झुमरिया के साथ गाते बजाते प्रवेश करते हैं)

गायन : हमहि भये इस नगर के सेठवा
पिय खाय रहि, नहिं फिकर जिकरवा।
बेचवा—बेचवा—खरिदवा-खरिदवा
कौड़ियों के भाव में बिकत मनुसवा—
मनुसवा—मनुसवा—
काहे रे मनुसवा—?—
हम हैं मनुसवा—हम हैं मनुसवा—
नहीं नहीं !—हम हैं सेठवा—हम हैं सेठवा
हम हो खरीदवे मानुस-मानुसवा—

(नगाड़े पर बोली लगाता एक विक्रेता आता है, कई दास-दासियों के साथ। उनमें एक अत्यन्त सुन्दर युवती भी है)

दास-विक्रेता : अरे आओ सेठो—आओ साहूकारो—बढ़िया माल—कौड़ियों के दाम—देखो ! परखो !!

(चार-पाँच व्यापारियों का प्रवेश मूछों पर ताव देते हुए और हाथों में मुद्राओं की थैली संभाले)

एक व्यापारी : (युवती की ओर देखता हुआ) लगाओ बोली, छुड़ायेंगे हम—किसी के हाथ न लगने दूँगा।

दूसरा व्यापारी : (पहले को धकेलते हुए) अबे उधर को जा ! आकाश को जीतने की हिम्मत न कर ! ये सुन्दरी दासी तो मेरे ही साथ जायेगी।

तीसरा व्यापारी : (जो ईरानी मालूम होता है) अबे खड़ा क्या है नगाड़ू—बोल बोली ! देखूं कौन टिकता है मेरे सामने—जान की बाजी लगा दूँगा इसे खरीदने के लिए।

दास-विक्रेता : आओ भाईयो, कौशाम्बी के सेठ साहूकारो ! बिकता है माल कौड़ियों के दाम—सहस्र मुद्रा—एक—

एक व्यापारी : पाँच सौ (खीस निपोरता हुआ)

दूसरा : पाँच सौ एक—

तीसरा : जा रे ! यही हिम्मत थी बस—हमने बोले एक हजार।

दास-विक्रेता : एक हजार—एक हजार—एक हजार एक—एक हजार दो—

(इतने में धनावह श्रेष्ठी का प्रवेश)

धनावह : रुको !—रुको—मेरी बोली है दस हजार—दस हजार—

तीनों व्यापारी : अरे रे रे रे रे रे—धनावह सेठ !—दस हजार—बाप रे बाप—

(तीनों व्यापारी खिसक जाते हैं)

दास-विक्रेता : दस हजार एक—दस हजार दो—दस हजार तीन—

(दास-विक्रेता युवती को मुक्त करता है। धनावह सेठ के पीछे पीछे युवती चली जाती है। दास-विक्रेता—बारू—मटक्—झुमरिया नाचते-गाते चले जाते हैं)

(वाद्य अन्तराल)

(दो स्त्रियों, वनसुन्दरी और नीर-भरना का प्रवेश। वनसुन्दरी मालिन है और नीर-भरना पनिहारिन)

नीर-भरना : अरी वन्या ! तू भी तो आयी थी श्रमण-मुनि वर्धमान के दर्शन करने ! हाय, क्या तेज है मुख पर और कैसा प्रकाश बिखरता है देह से ! पर सुना है कि वे पाँच महीने से उपवासी हैं—

वनसुन्दरी : हाँ नीरा ! इतना कठोर उपवासी शरीर और यह सूरज की सी जोत लिये देह ! आज मैं महारानी मृगावती के केशों में फूल सजाने गयी तो वे बहुत उदास थीं। वे श्रमण भगवान पार्श्वनाथ को पूजती हैं न, और वर्धमान भी श्रमण साधु हैं। उनके दर्शन करने वे प्रतिदिन जाती हैं। सारे नगर में, घर-घर में कहलाया है उन्होंने कि स्वामी वर्धमान के आहार को तरह तरह संजोया जाय। वे स्वयं प्रतिदिन आहार का आयोजन करती हैं। स्वामी वर्धमान निकलते हैं आहार को, पर पूरे पाँच महीने पचीस दिन हो गये और बिना जल आहार के लौट आते हैं। महारानी इसी बात से अत्यन्त व्याकुल हैं—उनकी नगरी में स्वामी आयें और इतने दिन निराहार रहें !

नीर-भरना : वन्या ! कोई बहुत ही टेढ़ी आखड़ी मन में ठानी होगी स्वामी ने—सत्य ही, बहुत चिन्ता की बात है। दुःख यह भी है कि हम तो उस जात के भी नहीं कि स्वामी को आहार दे सकें।

वनसुन्दरी : नीरा ! मेरा मन कहता है कि स्वामी आहार लेंगे तो किसी हम जैसी निम्न गिनी जाने वाली से।—स्वामी को देख कर लगता है कि उनके नेत्रों से करुणा झर रही है। उनके दर्शन से

फूटती शान्ति और प्रेम की किरनें हमें छू रही हैं जैसे वे हमारे हैं, बहुत हमारे—

नीर-भरना : हाँ, वन्या ! वे हमारे हैं—बहुत हमारे—सबके—सबके

(भाव-विह्वल सी अवस्था में दोनों का प्रस्थान। मंच पर अंधेरा। वाद्य संगीत।)

पार्श्व से वाचक स्वर : कौशाम्बी नगर, धनावह श्रेष्ठी का प्रासाद। एक सप्ताह पश्चात्—

(दासी युवती चंदना अत्यंत सुन्दर—लम्बे बाल—श्वेत वसन बेड़ियों से जकड़ी दीन मलीन अवस्था में बैठी है। एक प्रौढ़ नारी, नाम है मूला (धनावह सेठ की पत्नी) और नाई (चंदना के बाल काटने के लिए) वहाँ है।)

मूला : ओ हो क्या बनी थी बेटी मेरी—नागिन बन कर मुझे ही डसना चाहती है। हैं भी तो नागिन से लम्बे लम्बे बाल ! काटो इन्हें क्षूरसेन—मूंड दो इसका सिर। आज इसने हाथ धुलाते-धुलाते केश ही डाल दिये श्रेष्ठी के चरणों में—कैसा स्वांग रचा है ?

(सौम्यरूपा चन्दना की आँखों में आँसू झलक आये हैं किन्तु वह अवाक्-चुप है। अपने केश सामने कर देती है कटवाने के लिए)

क्षूरसेन : श्रीमती जी हाथ काँपते हैं—कैसे काटूं इन कोमल काली केश राशि को।

(चंदना अपने हाथ में कैंची लेकर स्वयं अपने केश काट देती है और मूला की ओर बढ़ा देती है। मूला बालों को एक ओर फेंक कर एक सूप में कोदों के दाने डाल कर चंदना को देती है)

मूला : यह ले—यह ले, खा ले—पड़ी रह।

(धनावह सेठ का प्रवेश। चन्दना को देखता है—मूला को—वह हक्का-बक्का हो बरस पड़ता है अपनी पत्नी पर)

धनावह : यह क्या देख रहा हूँ ? नारी की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति इस सीमा तक पहुँच सकती है, कभी कल्पना नहीं की थी। चन्दना बेटी ! तू बहुत ही अभागी है। मैं कुछ न कर सका तेरे लिए।

(सिर पकड़ कर बैठ जाता है। मूला लज्जित और स्तम्भित। धनावह एकाएक खड़ा हो जाता है और चन्दना की बेड़ियों को खोलने को बढ़ता है)

धनावह : बेटी चन्दना ! मैंने तुझे दासीत्व से मुक्त किया, तू स्वतन्त्र है। इस घर में तेरे लिए जगह नहीं दे सकी यह !···

चन्दना : **(भरे कंठ से)** पिताजी, पिताजी· मां···मां !···कहाँ जाऊँ ?

कितने धक्के खाये हैं ? भगवान ! शरण लो—शरण लो !

(वह उठ कर कोदों के दाने हाथ में ले, अधखुली बेड़ी पाँवों में पहने, घर के द्वार से एक पैर बाहर और एक पैर अन्दर रखे ही थी, कि उसकी दृष्टि महावीर स्वामी के चरणों पर पड़ी। वह उसी ओर जाती है। धनावह सेठ और मूला उसके पीछे-पीछे जाते हैं। मंच पर अन्धेरा)

(मंगल वाद्य ध्वनि)

पार्श्व-स्वर : महावीर भगवान की जय ! श्रमण धर्म की जय !
सती चन्दना की जय ! सती चन्दना की जय !—आहार ले लिया भगवान ने !—चन्दना के हाथों आहार हुआ—कोदों के दानों से आहार ! जय हो जय हो !

(वाद्य-संगीत। मंच पर प्रकाश)

(नर-नारियों का झुंड प्रवेश करता है। मंगल गीत गाते उत्सव मनाते जा रहे हैं)

भाग जगे कौशाम्बी के
दासी हाथों आहार हुआ···
लो दीन दुखी मानुष मन का
प्रभु के द्वारा उद्धार हुआ
धन्य धन्य हैं वर्धमान
समभाव सफल साकार हुआ।

पार्श्व-स्वर : कौशाम्बी के नागरिको ! महाराज शतानीक, रानी मृगावती जन-पथ पर पधार रहे हैं। वर्धमान स्वामी के आहार-अभिग्रह के पूर्ण होने के उपलक्ष्य में वे अपनी प्रजा के हर्ष में समान रूप से सम्मिलित होने को आतुर हैं।

(राजा शतानीक और मृगावती का प्रवेश। साथ में अन्य सभासद तथा नारी-वृन्द)

जन-समूह : राजा शतानीक की जय, रानी मृगावती की जय, श्रमण धर्म की जय, स्वामी वर्धमान की जय, सती चन्दना की जय···

('सती चन्दना की जय'—'सती चन्दना की जय'—ध्वनियाँ)

रानी मृगावती : (चन्दना को अंक में भरते हुए) चन्दना ! —मेरी बहिन ! हाय तू यहाँ कैसे ? (आश्चर्य चकित) तू और दासी ? हाय ! यह कैसा वेश तेरा! **(चन्दना को निहारती; स्वयं में खोई सी)** वैशाली

की राजकुमारी मेरी बहिन ! मेरे राज्य में दासी! कैसी विडम्बना भाग्य की ! इसकी आँखों में व्यथा के आँसू; ओठों पर भगवान की आहार-स्वीकृति की मुस्कान ! सौन्दर्य की प्रतिमा, मुँडे हुए केशों से प्रभामय ! पाँवों में बेड़ी; किन्तु एक पग देहरी से बाहर मुक्त—और दूसरा मुक्त होने को तत्पर ! —पुराने उड़द सूप में लिए; अन्तरंग से प्रभु को निहारती; —यह स्वप्न है या सत्य ?

चन्दना : **(स्वयं को मृगावती के अंक से मुक्त करती हुई धीर-गम्भीर मुद्रा में)** मैं अब किसी की बहिन नहीं—मैं केवल चन्दना हूँ—चन्दना—भगवान की शरण में जा रही हूँ—भगवान वर्धमान—महावीर ! महावीर ! **(भाव विह्वल हो चली जाती है)**

शतानीक : कैसा उजाला प्रवेश कर रहा है मुझ में ! —दिव्य किरणें मुझे स्पर्श कर रही हैं।—'मुक्ति' ! दासता से मुक्त हों—स्वतन्त्र हों प्राणी—नारी पूज्य है—नारी सम्बल है।

प्रजाजन : 'सती चन्दना की जय !'

(जयकार बोलते-बोलते सबका प्रस्थान)

वाचक : भगवान को अनुत्तर तप और ध्यान करते साढ़े बारह वर्ष हो गये थे। वे विहार करते पहुंचे जृंभिकग्राम, **(छाया चित्र भगवान का)** जृंभिकग्राम की ऋजुकूला नदी का तटवर्ती वन-प्रान्त; भगवान, शाल-वृक्ष की छाया में शिला पर विराजमान हैं। दो दिन से उपवास है। वे शुक्लध्यान की अन्तरिका में उतरे हुए हैं। वैशाख मास की शुक्ला दशमी का अपराह्न काल है, चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रों के मध्य में है। भगवान के अन्तर का आलोक-पुञ्ज केवलज्ञान भास्कर बन, अपने सम्पूर्ण तेज में उदित हुआ, जिसमें तीनों लोक, तीनों काल स्पष्ट झलक गये। जीवन और सृष्टि के सम्बन्ध में जिज्ञासु हृदय में उठते सब प्रश्नों का संतोषजनक समाधान मिल गया।—और भगवान प्राणी मात्र को उस ज्ञान को देने की स्थिति में आ गये, जिसके द्वारा वे संसार रूपी भवसागर को पार कर सकें। वे वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं नीति-आचार-शास्त्री सब एक साथ थे। वे अब परिपूर्ण हो गये।

(श्रावक-गण पूजा-स्वर में गाते हुए मंच पर से गुरजते हैं)

शुकल दसें वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना।
केवल लहि भवि-भव-सर तारे, जजों चरन सुख भरना।
नाथ मोहि राखो हो सरना॥

चौदहवाँ दृश्य

(मंच पर प्रकाश। निताशा और रीना का प्रवेश)

रीना : निताशा ! पूजा और भक्ति के साथ भगवान के भक्तजन केवल-ज्ञान प्राप्ति होने की अपूर्व घड़ी के प्रति अर्घ्य समर्पित कर रहे हैं। भगवान ने स्थापना की कि छह द्रव्य और सात तत्त्वों के मूल स्वरूप को समझने से त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं और घटनाओं का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

निताशा : वह किस तरह ?

रीना : छह द्रव्य यानी जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन छहों के संयोग से भौतिक जगत् का अस्तित्व है। जीवन का मूल आधार है जीव या आत्मा—अथवा चेतन तत्त्व, जो जुड़ा हुआ है अजीव या जड़ पदार्थ से जिसे जैन-शास्त्रों में पुद्गल कहा गया है। यह मूर्तिमत्ता या आकार प्रदान करने वाले परमाणुओं का समूह है। तीसरा है धर्म-द्रव्य यह जीव और अजीव के सम्मिश्रण में निहित वह गुण है जो उसे गमन करने या बढ़ने की सामर्थ्य देता है। चौथा है उसी में मिश्रित अधर्म-द्रव्य जो स्थिर होने या रोकने का कारण है। ध्यान देने की बात है कि धर्म-अधर्म गति और स्थिति के अर्थ में हैं—पाप-पुण्य के अर्थ में नहीं। आकाश वह द्रव्य है जिसमें वस्तु को अवगाह मिलता है—जिसमें सब कुछ समाया है। और छठा द्रव्य है काल जो अतीत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ से पूर्व-पश्चात् की बुद्धि उत्पन्न करता है और समय-परिवर्तन का बोध देता है।

निताशा : बहुत सुन्दर! ···आधुनिक दर्शन-शास्त्र भी तो वस्तु के अस्तित्व की धारणा इसी तरह कराता है।

रीना : अवश्य, और यदि सिद्धान्तों की व्याख्या में सूक्ष्म अन्तर हो भी, तो वह तो व्याख्याकारों की अपनी-अपनी दृष्टि है।

निताशा : अच्छी रीना ! अब बता कि सात तत्त्व क्या हैं ?

रीना : इस प्रश्न के उत्तर में अपने गुरु के स्वर मेरे कानों में गूंज रहे हैं, उन्होंने कहा था—सात तत्त्व हैं : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। जीव और अजीव तो सृष्टि के मूल

तत्त्व हैं ही। इनकी परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है जिसे कर्म होना कहते हैं—या शास्त्रों के शब्दों में आस्रव होना। कर्मों के होने से आत्मा या चेतना के ऊपर आवरण पड़ता जाता है, उसे बन्ध कहते हैं। इन बन्धों को रोकने के लिए जो संयम और साधना की जाये उसे संवर कहते हैं। और जिन तप और कष्ट सहन द्वारा संचित कर्म-बन्धों को जर्जर कर झार दिया जाये उसे निर्जरा; और जब यह निर्जरा प्रक्रिया पूरी हो जाये तो मोक्ष या मुक्ति प्राप्त होती है। यही सातवाँ तत्त्व जीवन का उच्चतम ध्येय है।

निताशा : अरी रीनू ! यह तो जैसे स्वच्छ दर्पण में जीवन का प्रतिबिम्ब दिख गया हो। समझने में कितना सरल और गहनता में कितना मार्मिक !

रीना : केवलज्ञान-प्राप्ति के बाद भगवान महावीर इन तत्त्वों पर आधारित जीवन-मार्ग का दर्शन करने हेतु, उपदेश देने अनेक प्रदेशों में विहार करने लगे। यही धर्म-चक्र-प्रवर्तन है। **(छायाचित्र)** उपदेश सुनने के लिए जो सभा जुड़ती थी, वह समवसरण कहाता है **(छायाचित्र)** क्योंकि उसमें सब प्राणी समान भाव से एकत्र होते थे—न केवल राजा, प्रजा, और प्रत्येक वर्ग के मनुष्य बल्कि पशु-पक्षी तक भी। तीनों लोकों के सभी तरह के प्राणी भगवान की देशना सुनने उस सभा में एकत्रित होते थे। केवल ज्ञान के बाद भगवान का प्रथम भव्य समवसरण राजगृह में संयोजित हुआ। नीतू ! आ, मनोबल के पंख लगा हम वहाँ पहुँचने की उड़ान भरें।

(मंच पर अन्धकार)

पन्द्रहवाँ दृश्य

(वाद्य-संगीत। मंच पर प्रकाश। जन-समूह का प्रवेश)

पहला स्वर : कैसा धन्य भाग्य है हमारा सुबाहु ! कि भगवान आज हमारे इस राजगृह नगर में पधारे और विपुलाचल पर विराजे हैं। हमें अवसर प्राप्त हुआ है इस महान सभा में उनका उपदेश सुनने का। अपने आकुल मन की बात क्या कहूँ भाई !···जब से तेरी बहिन मनहारी साथ छोड़ सुरग सिधार गयी, तब से जनम-मरन की बात से इतर-उतर सूझता ही नहीं।

दूसरा स्वर : ठीक कहते हो बन्धु ! मेरा भी मन क्या कम दुखी है—एक पल को चैन नहीं। ···पर, भगवान की वाणी सुनकर सारी आकुलताएँ मिट जायेंगी। दर्शन से ही आधे दुख दूर हो गये। न जाने क्या जादू है उनमें कि सामने आते ही माथा झुक जाता है। प्रश्नों का उत्तर जैसे अपने अन्दर से मिल जाता है उनके दर्शन से ही।

तीसरा स्वर : पर भद्र ! भगवान की वाणी कब खिरेगी ? समवसरण में आये घड़ियाँ बीत गयीं, पर भगवान मौन हैं। आलोक किरणें बरस रही हैं। पर जो भी है, घर वापिस जाने को पैर ही नहीं उठते। उनके मुखारविन्द की ज्योति अन्तर में पैठ गयी है। अब अंधेरे में नहीं जाऊँगा।

चौथा स्वर : सुव्रत ! सारी जनता और नगर-निवासी बहुत बेचैन हैं कि भगवान की कल्याणकारी वाणी कब खिरेगी ? मौन क्यों हैं भगवान ? दिनों पर दिन बीतते जा रहे हैं प्रतीक्षा में। अब जीवन ही क्यों न बीत जाये, यहाँ से वापसी नहीं। कल्याण जैसे उनकी उपस्थिति से ही झर रहा है।···उधर देखो तो ! कौन आ रहे हैं, मैं ठीक ही पहचान रहा हूँ न—वह श्री इन्द्रभूति गौतम और उनके पाँच सौ शिष्यों का समूह समवसरण सभा की तरफ जा रहा है। (**हर्षित हो**) कैसी अपार भीड़ उमड़ रही है पीछे-पीछे !

पहला स्वर : क्या कहा बन्धु ? इन्द्रभूति गौतम आ रहे हैं ?

दूसरा स्वर : एँ ? इन्द्रभूति गौतम प्रकाण्ड विद्वान्, वेद-वेदांग में पारंगत, महान यज्ञों के अनुष्ठाता !

तीसरा स्वर : यह तो प्रचण्ड शास्त्रार्थी हैं। ये अवश्य तीर्थंकर महावीर के मत को, उनकी मान्यताओं को चुनौती देने आये हैं।

चौथा स्वर : तब तो बड़ा आनन्द आयेगा इस विवाद में। भगवान को अपना मौन भंग करना ही होगा। चलो उधर चलें। (**प्रस्थान**)

(**इन्द्रभूति गौतम का प्रवेश**)

इन्द्रभूति गौतम: (**स्वगत**) मैं इन्द्रभूति गौतम, सोमिल ब्राह्मण के महायज्ञ में सम्मिलित होने अपने शिष्य-मण्डल के साथ मगध के गोबर गाँव से चल के आया कि देखा भीड़ उधर विपुलाचल की ओर जा रही है। सुना है कि वर्धमान ने कैवल्य प्राप्त किया है। यह कैसे अवसर का लाभ उठाया वर्धमान ने कि हजारों नर-नारियों का समूह यज्ञ में न जाकर उस ओर जा रहा है।···केवलज्ञान ! (**व्यंग्य के स्वर**

में) देखूं तो यह क्या कुचक्र है। मेरे लिए भी यही अवसर है। श्रमणनेता पार्श्व के समय से ही जुटे हुए हैं उनके शिष्य यज्ञ-संस्था को उखाड़ने में। अब इस नये नेता को पराजित कर अपने धर्म में दीक्षित करूँ।

(छायाचित्र उभरता है मानस्तम्भ का)

गौतम : अच्छा ये है धर्म-सभा का द्वार। यह भव्य स्तम्भ, आकाश को छूता हुआ। ओह! मानस्तम्भ! इसे देखकर मन शंकालु हो रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरा ही ज्ञान चुनौती में पड़ जाये? **(छायाचित्र की ओर आगे बढ़कर दूर दृष्टि करते हुए)** ओह! वह बैठे हैं महावीर। अद्भुत तेजपुञ्ज···! देखना है इनके ज्ञान का प्रकाश कितना है!

(मंच पर प्रकाश। जनसमूह का प्रवेश)

पहला स्वर : एं—इन्द्रभूति! भगवान के सामने!

दूसरा स्वर : अरे, यज्ञ छोड़ कर इधर आ गये!

तीसरा स्वर : सुना है इनके भाई अग्निभूति और वायुभूति भी आ रहे हैं इधर अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों के साथ।

चौथा स्वर : यह तीनों विद्वान, इनके पन्द्रह सौ शिष्य—और महावीर अकेले?

(हल्की सी मेघ-गर्जना का स्वर)

दर्शक : एँ! ये तो भगवान की वाणी गूँजी—सुनो! सुनो!—

(स्वर पार्श्व से आते हुए। भीड़ ध्यान से शब्दों को सुन रही है)

ध्वनि : **(भगवान की वाणी गूंज में)** गौतम इन्द्रभूति! तुम आ गये?

इन्द्रभूति : **(स्वगत)** हें मेरा नाम? कैसे जाना? शायद मेरी ख्याति···! **(प्रकट में)** हाँ भंते! मैं आ गया।

ध्वनि : **(गूंज में)** तुम्हें जीव के अस्तित्व में सन्देह है गौतम?

इन्द्रभूति : **(स्वगत)** यह प्रश्न ही तो मेरे मन का काँटा है···इन्होंने कैसे जाना? **(प्रकट में)** हाँ भंते!

ध्वनि : **(गूंज में)** तुम 'हो' यह तुम्हारा अस्तित्व है। इस वर्तमान अस्तित्व का एक अतीत है और एक भविष्य। पूर्व और आगामी से ही तो मध्य सधता है। इस जीव का वह अस्तित्व जो हो चुका, और जो होगा, उसका बोध इन्द्रियों से भी परे है। इसीलिए उसका साक्षात्कार अतीन्द्रिय ज्ञान से होता है।

गौतम : (स्वगत) यह मेरे मन-प्राण में कैसी बिजली-सी कौंधी ! सब आलोकित हो गया। (प्रकट में) भंते। मैं प्रणत हूँ। मैं आत्मा का साक्षात् करना चाहता हूँ। मुझे अपनी शरण में लें।

सामूहिक स्वर : भगवान महावीर की जय—

जनता के स्वर : सन्मति वर्धमान की जय—

(गौतम एक उच्च आसन पर खड़े होकर जन-समूह के समक्ष बोलते हैं। उनके पीछे ऊँचे स्थान पर एक प्रभामण्डल है जो भगवान महावीर का प्रतीक है।)

गौतम : मैं इन्द्रभूति गौतम, अब भगवान की वाणी का संवाहक, उनका गणधर हूँ। गण-गण तक उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म-तत्त्व प्रवाहित करने का दायित्व अब मेरा हुआ। आत्मा की अनुभूति इन्द्रियों से परे की वस्तु है। उनकी वाणी कभी निरक्षरी खिरती है, जो सामान्य वाणी से परे की होती है और कभी सामान्य जनता की भाषा में, चाहे वह मागधी हो या जनपदों की अठारह भाषाओं की मिली-जुली अर्धमागधी हो। मैं भगवान की देशना को प्राणी मात्र तक पहुँचाऊँगा। मैं, मेरे दोनों भाई और सारी शिष्य-परम्परा इस धर्म कर्त्तव्य में संलग्न रहेगी। उपस्थित भव्य मण्डली ! जन समुदाय ! अब तीर्थंकर की वाणी ध्वनित होने में विलम्ब नहीं होगा।

(राजा श्रेणिक, रानी चेलना, राजरानी मृगावती और चन्दना तथा अन्य राज-पुरुषों व राज-महिषियों का प्रवेश)

उनके स्वर : जय भगवान महावीर की। जय गौतम गणधर की।

राजा श्रेणिक : मुझ श्रेणिक का प्रणाम निवेदित है।

गौतम : मगधराज श्रेणिक ! आप भव्य जीव हैं जो भगवान् के समवसरण में पधारे।

रानी चेलना : मैं चेलना नमित हूँ भगवन्त के चरणों में।

गौतम : धर्म पर अचल श्रद्धा बनी रहे, महारानी चेलना !

राजा श्रेणिक : मैं श्रेणिक, अति-विनय पूर्वक एक प्रश्न का समाधान कराना चाहता हूँ भंते ! धर्म के श्रद्धान को, आचरण में कैसे उतारा जाये ? व्रतों के कठिन मार्ग पर कैसे चला जाये ?

महावीर वाणी (गूंज) : जो इंदिए जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आद, तं खलु जिदिंदियं ते भणति जे णिच्छिदा साहू।

गौतम : जो इन्द्रियों को वश में कर यह बोध पा जाये कि आत्मा शुद्ध-ज्ञान स्वरूप है, उसे निश्चय ही साधु-जन इन्द्रियों का विजेता कहते हैं।

महावीर वाणी (गूंज):

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए-परत्थ य ॥

गौतम : अपने आपको जीतो। अपने आपको जीतना ही वास्तव में दुर्गम है। अपने को जीतने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी होता है।

राजा श्रेणिक : अपने को जीतने के लिए आचरण क्या हो भन्ते ! प्रकाश डालिये इस तथ्य पर।

महावीर वाणी (गूंज) :

पाणाइवायमलियं चोरिक्कं मेहुणं दवियमुच्छं।
कोहं माणं मायं लोभं पिज्जं तहादोसं।
कलहं अब्भक्खाणं पेसुन्नं रइ अरइ समाउत्तं,
परपरिवायं मायमोसं मिच्छत्तसल्लं च ॥

गौतम : हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, दोषारोपण, चुगली, कपटपूर्ण व्यवहार और मिथ्या-दर्शन रूपी शल्य ये १८ पाप हैं। इन से विमुक्त रहना ही वह आचरण है, जिससे स्वयं को जीता जा सकता है।

महावीर वाणी (गूंज) :

आया वयाही चय सो अमल्लं, काने कसाही कनियं खु दुक्खं।

गौतम : आत्मा को तपाओ, सुकुमारता का त्याग करो, कामना को दूर करो, निश्चय ही दुख दूर होगा।

राजा श्रेणिक : धन्य भाग्य भगवन् ! आपके चरणारविन्द में नतमस्तक हूँ। भगवन् आप धर्म-यात्रा में जहाँ-जहाँ विहार करेंगे, मैं आपका अनुगत

हो, समवसरण में प्रस्तुत हो, धर्म की अवगाहना कर आत्मा को पुलकित करूँगा।

चन्दना : भगवन्त ! चन्दना श्री-चरणों में नमित है। भगवन् ! कौशाम्बी में दासी रूप में मुझ चन्दना से कोदों के दाने आहार में ग्रहण कर आपने मुझे भव-भव के पापों से मुक्त किया। आज समवसरण में खिरी अमृतवाणी ने आत्मा के कण-कण को ज्योतित कर दिया। आर्यिका-संघ में परिव्राजित कर धर्म की शरण में लें भगवन् ! मुझे दीक्षा दें।

रानी चेलना : भन्ते ! महाराज श्रेणिक की महारानी होने के नाते इस चेलना ने लौकिक वैभव की चरम-सीमा भोगी है। आपके अमृत वचनों ने अन्तरंग में उमड़ती उदासीनता को अलौकिक भव्यता का मार्ग दिखाया है भगवन् ! आत्मा की समृद्धि हेतु, मुझे अपनी शरण में लें। मुझे दीक्षित करें।

रानी मृगावती : मगधराज शतानीक की पत्नी मृगावती, चरणों में वन्दना करती है भगवन् ! मैं अपनी बहिनों—चन्दना और चेलना का अनुसरण करती, आपकी शरण में दीक्षित होना चाहती हूँ—

अभय और मेघ : महाराजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार और मेघ कुमार, दोनों आपकी शरणागत हैं भगवन् ! हमें दीक्षित कीजिए।

कई नर-नारी : हमें दीक्षा दीजिए भगवन्। हम जिन धर्म की शरण में आना चाहते हैं।

सामूहिक स्वर : चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

गौतम : धर्म की प्रभावना अपार है। भव्य जीवों का समागम है। प्रभु की अमृतवाणी खिर रही है।

महावीर वाणी : (गूंज) आत्मोन्नति के प्रशस्त पथ का अनुसरण करने वाले महाराज श्रेणिक बिम्बसार अपने धार्मिक संस्कारों की प्रबलता से, भविष्य में होने वाली नयी २४ तीर्थंकर परम्परा के आदि-प्रवर्तक होंगे। इन प्रथम तीर्थंकर का नाम होगा महापद्म।

(पटाक्षेप)

सोलहवाँ दृश्य

(पूनिया का घर। पत्नी सुभद्रा और पूनिया। पूनिया चरखा कात रहा है और सुभद्रा सूत लपेट रही है। पूनिया चरखा कातते गाथा गुनगुना रहा है।)

पूनिया : लोभो तणे विजादो जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं।
रइद मुउडादिसंगस्स वि हु ण पावं अलोभस्स॥

सुभद्रा : अजी ओ पूनिया ! क्या गुनगुना रहे हो—बोलते ही नहीं। ऐसे डूब कर रुई कात रहे हैं कि पता ही नहीं मैं कब की खड़ी हूँ, तुम्हें कुछ खबर भी है ?—ये तो महावीर भगवान् की सभा में क्या हो आये, उन्हीं के राग में खो गये हैं। जब देखो वही राग अलापते रहते हैं। मैं पूछती हूँ—कि दिन में १०० पूनी कात कर दाल-भात खाने भर से ही काम चल जायेगा क्या ? कुछ हाथ-पैर मारो कमाने को—पर कौन सुनता है मेरी ? बस यही गुनगुनाहट—

पूनिया : लोभ बढ़ने से मनुष्य करणीय और अकरणीय का चिन्तन नहीं करता भद्रे ! —वह अपनी मृत्यु की भी परवाह न करता हुआ धन पाने के लिए दुःसाहस कर बैठता है। अपरिग्रह महान् है भद्रे ! अपरिग्रह का अभ्यास कर भद्रे ! अपने ग्राम के मम्मण को जानती है न ?

सुभद्रा : हाँ श्रेष्ठी मम्मण ? अरे पूनिया जी ! मम्मण श्रेष्ठी को कौन नहीं जानेगा। उसके वैभव का क्या ठिकाना ? सुना है कल महाराज श्रेणिक स्वयं उसके सोने और रत्नों से सजे चमत्कारी बैलों को देखने उसके घर गये थे।

पूनिया : हाँ भद्रे ! उस प्रसंग की मूल बात सुन। कल से पहले वाली रात जब वर्षा और आँधी का तूफान उठा, उस समय महाराजा और रानी चेलना ने देखा कि उस काल-रात्रि में एक आदमी नदी के तट पर लंगोटी पहने खड़ा, नदी में प्रवाहित लकड़ी के लट्ठों के टुकड़ों को संजो रहा है ; रानी ने महाराज से कहा, "आपके राज्य में लोग बहुत गरीब हैं, आपका प्रशासन गरीबी नहीं मिटा सका महाराज !" महाराज को यह आरोप चुभ गया। उन्होंने उसी समय आदमी भेज कर नदी के तट पर खड़े व्यक्ति को बुलवा भेजा। भद्रे ! जानती हो वह कौन था ?

सुभद्रा : होगा कोई गरीब लकड़हारा—भूख से मारा। पर अपने नगर में हम से गरीब कोई नहीं है पूनिया जी।

पूनिया : अरी भद्रे ! यही तो तेरा मति-भ्रम है कि हम से गरीब कोई नहीं। अरी वह था—वह था—धनी श्रेष्ठी मम्मण।

सुभद्रा : मम्मण ? वह वहाँ क्या कर रहा था ऐसे कुसमय में ? नहीं वह क्यों होगा ?

पूनिया : क्यों था वह वहाँ, इसका उत्तर पाने ही महाराज कल मम्मण के यहाँ स्वयं गये। उसका वैभव देख महाराज आश्चर्य में डूब गये, बोले—ठीक कहते थे मम्मण ! जिस बैल की जोड़ी बनाने के लिए तुम तूफानी रात में लकड़ी बटोर रहे थे, उसकी जोड़ी का बैल मेरी गोशाला में नहीं। हल जोतने के लिए या रोटी कपड़ा जुटाने के लिए उपयोगी बैल मेरी गौशाला में मिलता, पर तूफानी रात में बहती आई लकड़ी के टुकड़ों को जोड़कर बनाया निर्जीव बैल जो सोने से मंढा हो, रत्नों से जड़ा हो—वह तुम्हारे जैसे कला-संग्रही और कला-वैभवी के पास ही हो सकता है मेरे पास नहीं।

सुभद्रा : पूनिया ! यह घटना सुनकर मेरे तो अन्तरंग तक के रोम खड़े हो गये। मम्मण श्रेष्ठी और काष्ठ के बैल के पीछे तूफानी रात में लंगोटी पहने नदी में ! तुम तो इस घटना को ऐसे सुना गये जैसे तुम्हारी आँखों देखी, कानों सुनी हो।

पूनिया : आँखों देखी तो नहीं भद्रे ! पर भगवान् महावीर के समवसरण में महाराज-महारानी द्वारा कही गई को कानों से अवश्य सुना—सब ने सुना।

सुभद्रा : भगवान् ने इस घटना को सुनकर क्या प्रवचन शब्द कहे ?

पूनिया : भगवान् की निरक्षरी वाणी को गौतम गणधर ने जिस तरह कहा वह स्वर मेरे कण्ठ में यों के यों ही अटके पड़े हैं। उन्होंने कहा, "राज्य का आर्थिक विधान गरीबी और अमीरी की समस्या से परे है। परिग्रह की भावना से, आडम्बर इकट्ठा करने की चाह से असमानता और परस्पर की होड़ उत्पन्न होती है। यह विषमता को जन्म देती है। व्यक्तिगत एवं समाजगत मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए अपरिग्रह भावना से प्रेरित आचरण करना धर्म है।" स्थूल लौकिक भाषा में, परिग्रह का अर्थ वस्तुओं का संग्रह है। धर्म की दृष्टि से यह बाह्य परिग्रह है

इस परिग्रह से भिन्न है मानसिक परिग्रह, जो अन्तरंग है, और आत्मा के गुणों को ढंकने में वह अधिक प्रबल है। चैतन्य या जीवात्मा से परे जो भी है, उसमें आसक्ति भाव होना, मोह या मूर्च्छा भाव होना अन्तरंग परिग्रह है। इस दृष्टि से शरीर परिग्रह है, संचित कर्म परिग्रह हैं, अर्थ और वस्तुएँ तो परिग्रह हैं ही। पर जिसका मन मूर्च्छा से या लगाव से शून्य है, उसके लिए वस्तु केवल वस्तु है, उपयोगिता का साधन, परिग्रह नहीं।

सुभद्रा : पूनिया ! इतनी कठिन बात मैं कैसे समझूँ ! क्या-क्या बोल गये तुम ? धुनिये हो तुम और धुन में रम गये, बह गये—

पूनिया : अरी भोली भद्रे ! समझ ले कि भगवान् का कहना है कि दाल-रोटी खाकर जी को सन्तोष देने से शांति मिलती है। ज्यादा हाथ-पैर मार कर धन कमाने को कहेगी और उसमें मन को रमायेगी तो तृष्णा बढ़ती जायेगी, आकुलता बनी रहेगी—मन कभी सुखी नहीं होगा।

(श्रावक नर-नारियों के स्वर पार्श्व से। पूनिया और सुभद्रा हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से सुनते हैं।) (मंच पर अन्धेरा)

श्रावकों के स्वर : महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।
महामोहातंक-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषग्
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।

श्रावकों के स्वर : महामोह की व्याधि वैद्य बन दूर हटाते,
प्राणिमात्र के बन्धु जगत का पाप मिटाते।
भवभयहारी प्रणत जनों को सुखी बनायें,
महावीर वे नयन मार्ग से मन में आयें।

वाचक : भगवान् का मंगल विहार जिन-जिन प्रदेशों और जन-पदों में हुआ—उन कौशल, काशी, विदेह, मिथिला, श्रावस्ती, चम्पा, साकेत, नालन्दा, मगध पंचाल, शौरसेन आदि भू-खण्डों के शासक, मंत्री, सेनापति, पुरोहित, विद्वान्, श्रेष्ठीगण और सामान्य जनता—सब भगवान् द्वारा प्रवर्तित अहिंसा-मूलक श्रमण धर्म का श्रद्धान करते गये। समवसरण की सभाओं में आस-पास के ग्रामों, नगरों से हजारों की संख्या में नर-नारी उपस्थित होते थे। भगवान् प्रत्येक की जिज्ञासाओं का समाधान करते, सुख और शान्ति का वातावरण बनाते विहार कर रहे थे। स्थान-स्थान पर समवसरण रचे जाते—सभाएँ होतीं—

सत्रहवाँ दृश्य

(धर्म-सभा का दृश्य। भामंडल पीछे है और सामने गौतम आसीन हैं। आस-पास साधु-साध्वी उपस्थित हैं। गृहपति आनन्द भी सभा में उपस्थित हैं।)

आनन्द : आनन्द का प्रणाम श्री-चरणों में निवेदित है भगवन्! आपके सार-गर्भित वचनामृत से अभिभूत हूँ। किन्तु, जिन परिस्थितियों के वशीभूत हूँ उनके निदान का प्रार्थी हूँ। भगवन् 'अहिंसा' का मूल मंत्र आपने दिया, किन्तु उसका पालन किस प्रकार किया जाये? भौतिक जगत् के विकास में, जीवन जीने के लिए, खाते-पीते, चलते-फिरते, धनोपार्जन करते, खेती-बाड़ी करते सब ही कार्यों में स्थूल और सूक्ष्म जीवों का घात निहित है। इस हिंसा से कैसे बचा जाये?

महावीर वाणी (गूंज) :

जीववहो अप्पवहो जीवदया होदि अप्पणो हु दया।
विसंकटओव्व हिंसा, परिहरिदव्वा तदो होदि॥

गौतम : किसी भी प्राणी का वध, अपनी आत्मा का ही वध है, किसी भी प्राणी की दया, आत्मा की ही दया है, इसीलिए हिंसा का विष-कंटक के समान परिहार करना चाहिए। जीवन जीने में, वनस्पति की हिंसा हो ही जाती है। जल, वायु, पृथ्वी और आकाश में व्याप्त प्राण-परिमाणों के घात से बचा नहीं जा सकता। वह प्रारम्भी हिंसा होती है, वह हो जाती है, जान-बूझकर की नहीं जाती। अनिवार्य रूप से हो जाने वाली ऐसी हिंसा को जितना कम कर सको करो। आनन्द! तुम्हारा कुटुम्ब बड़ा है, विशाल खेत हैं, हजारों गाय-भैंसे हैं। सैकड़ों कर्मचारी तुम्हारे अधीन काम करते हैं। उनके प्रति निर्मम न होकर, संकल्प पूर्वक पशुओं को बिना शारीरिक पीड़ा पहुँचाए, पूरा खाना-पीना देकर, अधिक भार न लाद कर, उनका अंग छेदन न कर, बन्धन से जितना मुक्त रख सको रख कर, और बेकार हो जाने पर उनका बध न कर तुम अहिंसा का पालन कर सकते हो। हल चलाने, खेत जोतने और उद्योग करने में जो हिंसा निहित है वह उद्योगी हिंसा है। उसको अपनी सावधानी से

जितना घटा सकते हो घटाओ। हिंसा का सूक्ष्म रूप मन के भीतर होता है। भाव-हिंसा राग और द्वेष से उत्पन्न होती है जो तीर-तलवार से भी अधिक घात करती है। अहिंसा का पालन मन, वचन और काया तीनों से होता है।

आनन्द : भगवान् की वाणी मेरे अन्तस्तल तक पहुँचाने के लिए गौतम गणधर के प्रति मैं विनीत हूँ। भंते, मैं गृहस्थ हूँ नाना प्रकार के अन्याय, शत्रुता, और कपट की चपेटें इतनी तीव्र होती हैं कि बदला लेने की या दंडित करने की भावना उग्र हो उठती है। पाप-पूर्ण व्यवहार के प्रति हिंसा भाव हो जाना स्वाभाविक है, ऐसी परि-स्थिति में क्या किया जाये ?

गौतम : आनन्द ! जिस प्रकार विशेष परिस्थितियों में आरम्भी और उद्योगी हिंसा को—व्यक्ति के विवेक-बुद्धि की सीमा में बाँध कर क्षम्य कहा है उसी प्रकार अनीति के विरोध में शुभ उद्देश्य से न्यूनतम हिंसा क्षम्य है। त्याज्य है संकल्पी हिंसा जो जान-बूझ कर प्रतिहिंसा के लिए या स्वार्थ-वश की जाये।

आनन्द : भन्ते ! विशेष परिस्थितियों में गृहस्थ व्यक्ति अपने विवेक-बुद्धि को कैसे प्रयोग में लाये—इसका पथ-प्रदर्शन करने की कृपा करें।

गौतम : भगवान के चिन्तन में यह समस्या स्पष्ट थी, इसीलिए उन्होंने गृह-त्यागी साधुओं के लिए न केवल अहिंसा को बल्कि सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के व्रत को महाव्रतों की भाँति अर्थात् उन की चरम सूक्ष्मता में पालन करने का आदेश दिया, और गृहस्थ के लिए उन्हीं व्रतों को अणु रूप में अर्थात् अनिवार्य रूप से हो जाने वाली सीमा और मर्यादा के अनुरूप पालन करने की विस्तारपूर्वक व्यवस्था की है।

आनन्द : भन्ते ! मेरे अन्तस् में मानस के ज्ञान-द्वारों से ज्योति प्रवेश कर रही है। भगवान की वाणी द्वारा मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ। अब मैं आश्वस्त भाव से अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूँगा, यह बल प्राप्त हुआ।

पार्श्व स्वर (श्रावकों के) :

जिनवचन-रसायनं दुरापं, श्रुतियुगलांजलिना निपीयमानम्।
विषय-विष-तृषामपास्य दूरं, कमिह करोत्यजरामरं च भव्यम्॥

(मंच पर अन्धेरा)

अठारहवाँ दृश्य

(विद्वत् सभा का आयोजन। मंखलि गोशाल, पूर्ण कश्यप, केश-कम्बली, प्रकुद्ध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त, श्रमणकेशी आदि दार्शनिकों की परम्परा का प्रतिनिधित्व या तो वे स्वयं कर रहे हैं या उनके शिष्य जो उनके नामधारक हैं। विद्वानों के लिए आसन बिछे हैं और जय जयकार की ध्वनि गूंज रही है वायु मंडल में। ऐसा आभास कि सभागार के बाहर बहुत भीड़ है। भगवान पार्श्व की जय, कुमार श्रमण-केशी की जय, आजीवक प्रवर गोशालक की जय, गुरुवर प्रकुद्ध कात्यायन की जय, अजितकेश कम्बली की जय, श्री संजय वेलट्ठिपुत्त की जय, गौतम गणधर की जय, महावीर स्वामी की जय–आदि जयकार ध्वनियाँ।)

(आजीवक प्रवर महापण्डित मंखलि गोशालक का प्रवेश)

मंखलि गोशालक (स्वगत) : धार्मिक चेतना का कैसा अद्‌भुत संगम-स्थल है यह श्रावस्ती ! यहाँ मुझ, गोशालक का भी स्वागत जय-ध्वनि के साथ है, यद्यपि मैं वर्धमान का साथ छोड़कर उनके विपरीत सिद्धान्तों का पोषक, आजीवक नेता हूँ। श्रावस्ती के जन-मन में महावीर ने ऐसा मंत्र फूंका है कि यहाँ सम्प्रदायों का मत-भेद नागरिकों के मन में वैषम्य का भाव लाना भूल गया है। आखिर इसका क्या रहस्य है ? भारतीय धर्म की दो मुख्य धाराएँ श्रमण और वैदिक, आज तीन सौ तिरेसठ धर्म सम्प्रदायों में विभक्त हैं। आज की इस विद्वन्मण्डली में श्रमण सम्प्रदायों के प्रायः सभी मुख्य प्रतिनिधि उपस्थित हैं। उन सबके दार्शनिक चिन्तन का समन्वय करने का दावा है महावीर का। हमें देखना है कि कैसे सम्भव है यह समन्वय ?

(एक एक कर विद्वानों की जय का नारा लगता है और वे सब आकर अपना-अपना आसन ग्रहण करते हैं। मध्य का आसन रिक्त है)

श्रमण केशी : प्रबुद्ध विद्वद्‌गण ! जगत् और परमसत्ता का अन्वेषण, एवं अविनाशी सुख की खोज हम सबके चिन्तन का विषय रहा है। आज जिस उद्देश्य से हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं, वह आप सबको

विदित है। मैं यह उचित समझता हूँ कि श्री गौतम गणधर मध्य का आसन ग्रहण करें और सभा का संचालन करें।

गौतम : यदि आप सबकी यही इच्छा है।

(वह मध्य का आसन ग्रहण करते हैं)

मखलि गोशाल : (अहंभाव से) मैं सर्वप्रथम अपनी मान्यता आपके सम्मुख रखता हूँ।

गौतम : (प्रसन्न मुद्रा में) अच्छा, मंखलि गोशाल ! आप ही कहें।

मंखलि गोशाल : मेरी मान्यता है कि जो कुछ होना है, वह पूर्व निश्चित है। मनुष्य अपने प्रयत्न से उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता। श्रमण महावीर मेरे इस नियतिवाद को स्वीकार भी नहीं करते और खण्डन भी नहीं। इस चतुराई से वे मेरे शिष्यों और जनता को भ्रम में डाल कर अनिश्चित धर्म-मार्ग पर ला रहे हैं। क्या यह उचित है, पूर्णकश्यप ?

पूर्ण कश्यप : मंखलि गोशाल ! यदि आपकी मान्यता सत्य है कि जो होना है वही होगा, तब तो महावीर के उचित-अनुचित मार्ग पर ले जाने से अन्तर ही क्या पड़ता है ? मेरी दृष्टि में तो व्यक्ति न पुण्य करता है न पाप, न अच्छा न बुरा, मनुष्य के कृतित्व का प्रश्न ही नहीं है। इसलिए यदि मेरे अक्रियावाद को मानें तो जीवन सरल और सुगम हो जाय—जटिल दार्शनिक गुत्थियों से मुक्त।

केश कम्बली : यदि मुझ अजित केश कम्बली की बात मानें तो सब विवादों से नितान्त मुक्त हो जायें। मेरा विश्वास है कि जो कुछ है, इसी लोक में इसी शरीर के साथ है। शरीर के नाश हो जाने पर कुछ नहीं रहता। मनुष्य पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु का पुतला है—बस और कुछ नहीं।

प्रकुद्ध कात्यायन : केश कम्बलिन् ! आपने जिन चार पदार्थों के नाम लिए हैं उनमें तीन और जोड़ें—जीव, सुख और दुख। सातों पदार्थ अचल हैं, एक दूसरे को नहीं सताते। आप क्या कहते हैं संजय बेलट्ठिपुत्त !

संजय बेलट्ठिपुत्त : मैं कहूँगा क्या ? कहने की बात ही क्या ? इतनी विविध मान्यताओं को सुनकर भी क्या आप मेरे दर्शन की निष्पत्ति पर नहीं पहुँचते कि जहाँ जो कुछ है अनिश्चित है, संशय-ग्रस्त है। सब अकल्पित है, अतर्क्य है। वास्तव में महावीर का अनेकान्त-वाद भी, मेरी दृष्टि में, इसी अनिश्चयवाद का दूसरा रूप है। कहिये भंते गौतम ! यही है न अनेकान्तवाद ?

गौतम : भगवान महावीर के अनेकान्तवाद दर्शन की विशेषता ही यह है कि उसमें आप सबकी अलग-अलग विरोधी बातों का समाहार है,

सबका समन्वय है। अनेकान्त के सिद्धान्त द्वारा विभिन्न दृष्टि-कोणों को केन्द्रित कर वस्तु को पूर्ण अखण्डता में देखने का प्रयास है। वस्तु के अनन्त पर्याय हैं, पर्यायों को देख कर ही हम वस्तु को वैसा नाम या गुण प्रदान करते हैं। यदि अव्यक्त पर्यायें प्रकट हो जायें तो हमें विरोधाभास लगता है। जो व्यक्त है वह एकांगी है या कहना चाहिए कि उस विशेष समय, स्थिति और संदर्भ के सापेक्ष में वह है। अन्यथा वह कुछ और भी है। विचार में सापेक्षता का सिद्धान्त ही अनेकान्त है और व्यवहार या वाणी में उस दृष्टि से कहना स्याद्वाद है। अखण्ड का बोध तो सत्य होता ही है। पर खण्ड का बोध भी सत्य होता है, यदि उसके साथ 'स्यात्' अर्थात् 'अपेक्षा से' शब्द का भाव जुड़ा हुआ हो। श्रमणकेशी ! भन्ते ! आपने भगवान महावीर से तथ्य को कैसे ग्रहण किया, उसका विवेचन प्रस्तुत करें।

श्रमणकेशी : इस विद्वत्-परिषद् के गण-मान्य दार्शनिक नेताओं के सम्मुख भगवान के समन्वयवादी मंत्र का रहस्य और सत्य स्वयं उद्घाटित होता गया है। जैसे दही का मंथन करें तो मक्खन निकालते समय बिलोने वाला एक हाथ पीछे, और दूसरा आगे आता है, उसी तरह सत्य को पाने के लिए, मन के मंथन-क्रम में कभी कुछ खण्ड-सत्य ऊपर तल पर आता है, कभी दूसरा खण्ड-सत्य निचले तल तक। प्रत्येक कण का मंथन होने के पश्चात् ही नवनीत ऊपर तैर कर आता है। इसी तरह विभिन्न एकांगी दृष्टियों के मंथन से या अनेकान्ती दृष्टि की प्राप्ति होने पर ही सच्चे ज्ञान का नवनीत हाथ लगता है। श्रमण अजित धर्म के स्वतन्त्रचिंतको ! क्या आपको इस दृष्टि में निहित बौद्धिक अहिंसा का एक नया आयाम खुलता दृष्टिगत नहीं होता ?

केशकम्बली : भन्ते ! यह तो विचित्र रहस्य को उद्भासित करता सिद्धान्त है। व्यक्ति की सरल सहज बुद्धि को स्वीकार कर आग्रही मान्यताओं से मुक्ति देता, स्वच्छ वायु-सा प्राण-संचारक सिद्धान्त ! विचार और व्यवहार में इतनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का मुक्त आभास ! यह तो जीवन जीने का अमोघ मंत्र है। आश्चर्य ही क्या जो श्रावस्ती, और श्रावस्ती के अतिरिक्त जिस-जिस प्रदेश में महावीर भगवान का देशना-भ्रमण हुआ है, वहाँ के मनुष्य—नर-नारी, मानसिक और शारीरिक पीड़ा और तनावों से मुक्त हो रहे हैं।

(पार्श्व से महावीर भगवान की जयकारों के स्वर। सभा का विसर्जन। एक-एक कर सभी विद्वानों का प्रस्थान जयकार-स्वरों के साथ-साथ। मंच पर अकेले गोशालक रह जाते हैं। वह चिंता की मुद्रा में खड़े हैं)

गोशालक : (स्वगत) आश्चर्य ! आश्चर्य ! अवाक् हूँ, स्तब्ध हूँ महावीर की समन्वय दृष्टि से। किन्तु मेरा दम्भ ? मेरी अपनी सत्ता ?··· कैसे झुकूँ ? कैसे करूँ समर्पित अपने उस अस्तित्व को जो मुझ पर छाया हुआ है, मुझे ग्रसित किये है ?तो क्या मैं तीर्थंकर नहीं कहाऊँगा ? क्या केवल वर्धमान महावीर ही इस पद को प्राप्त कर गये ? (चिन्तातुर और निराश जैसी मुद्रा में प्रस्थान)

अन्तिम दृश्य

(श्रावक-गण दो-दो करके विविध प्रान्तों की वेश-भूषा में प्रवेश करते हैं और मंच पर विनय-मुद्रा में स्थान लेते हैं स्वर उभरते हैं।)

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

वाचक : अर्हंत् केवली होने के पश्चात् ३० वर्ष तक भगवान महावीर ग्रामानुग्राम—एक जनपद से दूसरे जनपद तक समवसरण सभा करते और अपने अमृत-प्रवचनों से जन-मानस को सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्चारित्र का बोध कराते, पावा में पहुँचे। (**देश-प्रदेशों के राजे-महाराजे, रानी-महारानियों, साधु-साध्वियों तथा अपार जन-समुदाय का प्रवेश**) भगवान की आयु इस समय ७२ वर्ष की थी। निर्वाण समीप है यह उन्हें ज्ञात था। वहाँ अनेक सरोवरों से युक्त वन में वे एक विशुद्ध शिला पर विराजमान हुए। दो दिन तक उन्होंने न आहार लिया और न विहार किया। वे आगामी पलों को जानते थे और समझते थे कि गौतम उनकी देह-मुक्ति से विचलित होगा। इसलिए भगवान ने गौतम गणधर को एक अन्य गाँव में सोमशर्मा को धर्मोपदेश देने हेतु भेज दिया। वे स्वयं शुक्ल ध्यान में तल्लीन हो गये। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी, महत्त्वपूर्ण घड़ी—मोक्षमार्ग की अन्तिम सीढ़ी पर चरण हैं भगवान के —रात्रि का अन्तिम भाग—चन्द्र स्वाति नक्षत्र में। भगवान का दिव्य आलोक जगत् में दैदीप्यमान हो उठा। लाखों तारों की ज्योति उनके चरणों पर नमित थी।

निर्वाण का क्षण निकट है—यह जान कर उपस्थित सभी जनों के हृदय व्याकुल विह्वल अभिभूत थे। शुभ क्षण आया और सभी को एक दिव्य ज्योति-शिखा आलोकित कर गयी। भगवान मोक्ष को पधारे। शरीर का परित्याग कर वे सिद्धत्व को प्राप्त हुए। लक्ष्य-लक्ष्य दीप आकाश से पृथ्वी तक जगमगा उठे। निर्वाण-महोत्सव का जय-जयकार और मंगल स्वर वायु में निनादित हो उठे।

(आलोक-प्रपात द्वारा ज्योति-स्फुरण)

(दीपक लिये नाटक के सभी पात्रों का मंच पर प्रवेश)

सामूहिक स्वर : भगवान महावीर की जय—महावीर स्वामी की जय—तीर्थंकर वर्धमान की जय।

पूजा गायन

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुर तें वरना।
गनफनि-वृन्द जजैं तित बहुविधि, मैं पूजों भय हरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना।
श्री वर्धमान जिनराय जी, मोहि राखो हो सरना॥

ओं ह्रीं कार्तिक-कृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री-महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पात्रों में से निताशा और रीना मंच पर कुछ आगे बढ़कर)

निताशा : अरी सखी रीना ! मैं तो बिल्कुल सुध-बुध खोये रही—लगा है जैसे गहरी अलौकिक तन्द्रा से चौंकी हूँ।

रीना : तीर्थंकर महावीर की वाणी आज ढाई हजार वर्षों से संसार के हृदय को प्रक्षालित करती, भगवान की शाश्वत ज्योति को अनेक प्रतिबिम्बों में आलोकित करती, समय के तटों को बनाती, संवारती, युगानुकूल अंकुरों से जन-मानस की धरती को उर्वर करती, प्रशस्त रूप से प्रवाहमान है।

(सामूहिक गायन)

वीर-हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है।
ज्ञान-पयोनिधि मांहि रली, बहुभंगतरंगनि सों उछरी है
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है।।
या जगमंदिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी
श्री जिनकी धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी।।
तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते, रहते अविचारी
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं जिनबैन बड़े उपकारी।।

(पूर्ण पटाक्षेप)

मानस्तम्भ

रेडियो-रूपक

'मानस्तम्भ'

(प्रारम्भिक संगीत। संगीत-स्वरों पर टेलीफ़ोन की आवाज़)

माणिक : (फ़ोन उठाकर) हलो, कौन, छोटे बोल रहा है? हाँ, माणिक बोल रहा हूँ। बोलो यार बोलो—कल कपूर के यहाँ मिल रहे हो न? क्या? हाँ—हाँ—छापा पड़ा—तुम?—अच्छा—भाईजी को ले गये—जिन्दाबाद—स्टेटस बढ़ा। कांग्रेचुलेशन्स—हाँ—जरूर बढ़ेगा—मेरा भी बढ़ेगा स्टेटस—आजकल जेल गये बिना हम जैसे लोगों का स्टेटस बनता कहाँ है? (हँसी) हाँ—हाँ—बोलो—बोलो—नहीं छोटे, घबराना क्या है—होना है होगा—थैंक्यू—डोण्टवरी—भागूँगा नहीं—थैंक्यू—बाई—

(फ़ोन रखने और धीरे-धीरे हँसने की आवाज़—फ़ेड आउट)

टिप्पणीकार : फ़ोन पर समाचार पाकर माणिक घबराया नहीं। घबराना उसकी आदत नहीं है। बस ज़रा सा कनपटी के थोड़े थोड़े से पके बालों के पास पसीना आ गया है। फ़ोन से हट कर वह ऊँची मेज पर रखे बिल्लौरी शीशे के फूलदान में सजे गुलाबों को छू रहा है। बस सिर्फ़ उसकी उँगलियाँ काँप रही हैं और वह घबरा नहीं रहा। फ़ोन पर उसने अपने दोस्त से कह दिया है—इन्कम-टैक्स वाले हों या एक्साइज़ वाले—कोई भी आयें। आयेंगे। और जगह गये हैं। माणिक के यहाँ भी आयेंगे। सबसे बड़ा जौहरी है। वह घबरा नहीं रहा बस सिर्फ़ आँखों की कोर से दरवाज़े की तरफ़ देखता है और अपनी पिंडलियों में एक हल्का कम्पन महसूस करता है।

(दरवाज़े की की घंटी बजती है)

माणिक : (दबी आवाज़) कौन है?

(घंटी की आवाज़)

माणिक : नहीं।

(घंटी की आवाज़ बढ़ती जाती है)

माणिक : नहीं—घबराहट नहीं है—कांग्रेच्युलेशन्स—स्टेटस—स्टेटस—बढ़ेगा—जेल गये बिना नहीं—हे भगवान!

(घंटी की आवाज का विस्फोट। शान्ति)

(प्रारम्भिक संगीत के बाद फिर घंटी)

गुणवन्ती : (दूर से) अरे पंचू देख कौन है ? सुरेश—(घंटी) कहाँ चले जाते हैं सब लोग। (नारी का प्रवेश) अरे तुम—! —आलो ! —तुम—

आलोका : हाँ गुणो—क्यों बहुत ताज्जुब हुआ ?

गुणवन्ती : हाँ—नहीं, मगर—ऐसे अचानक—

आलोका : आना नहीं चाहिए था ?

गुणवन्ती : अरे कैसी बात करती है तू ? चल अन्दर आ। और साथ कौन है ?

आलोका : कोई नहीं। उफ़ अभी से इतनी गर्मी पड़ने लगी। एयरपोर्ट से यहाँ तक बस भुन गयी—

गुणवन्ती : एयरपोर्ट से आ रही है सीधी ? तो वो फ़ोन क्या तेरा आया था ? तुझे ही लेने गये होंगे, मिले नहीं ?

आलोका : फ़ोन ? फ़ोन तो किसी को नहीं किया। आधा घंटा वहाँ रुकी, एक कॉफ़ी ली और फिर यहाँ आ गयी। और सब कहाँ हैं ?

गुणवन्ती : सब ? मीता है और सुरेश। एग्ज़ैम्स हो रहे हैं न—अरे मीता ! आ जायेंगे अभी, ऊपर होंगे। चल तू हाथ मुँह धो ले।

आलोका : मगर गुणो, तुझे ताज्जुब नहीं हो रहा कि मैं अचानक कैसे आ गयी।

गुणवन्ती : (थोड़ा सा अटककर) लो इसमें ताज्जुब की क्या बात है। अपने घर कोई आता नहीं है ? नाथ साहब कहाँ हैं ? मैंने तो कभी देखा ही नहीं उनको। आयी थी तो साथ ले आती।

आलोका : छोड़ो भी गुणो। कभी अकेले रहना भी सीखना चाहिए।

गुणवन्ती : अरे—हाँ—ज़रूर—बिल्कुल। तू बैठ, मैं नाश्ते को बोल दूँ—पता नहीं कहाँ चले गये सब—

आलोका : अरी बैठ न गुणो। हाय तू मोटी नहीं हो गयी थोड़ी सी ?

गुणवन्ती : हाँ अक़्ल भी मोटी हो गयी है—

आलोका : ऐसे क्यों बोल रही है गुणो, मेरा आना अच्छा नहीं लगा ? चली जाऊँ ?

गुणवन्ती : चाँटा मारूँगी !

आलोका : मार। सच मारना। अच्छा लगेगा। लगेगा तू प्यार करती है।

गुणवन्ती : उफ़ ! ज़रा भी नहीं बदली। वैसी की वैसी ही।

आलोका : हाय तूने घर कितना अच्छा सजा रखा है। **(थोड़ी दूर जा कर)** सुना है तू पिछले साल स्विटज़रलैण्ड गयी थी ? कब गयी थी ? मैं भी तो वहीं थी—

(स्टीरियो पर विदेशी संगीत का रेकार्ड)

गुणवन्ती : अरे अब तू म्यूज़िक सुनेगी या नाश्ता करेगी।

आलोका : हो जायगा नाश्ता। बैठ जा। कितना अच्छा रेकार्ड है—

गुणवन्ती : अजीब हो गयी है तू। ठहर मैं मीता को बुलाती हूँ वही तेरा साथ देगी।

आलोका : गुणो ! नहीं, बैठ न थोड़ी देर यहीं। **(पॉप संगीत)** गुणो ! एक बात बताऊँ — मैं विधवा हो गयी हूँ।

गुणवन्ती : क्या ? क्या बक रही है ?

आलोका : ठीक कह रही हूँ गुणवन्ती ! मिस्टर नाथ इज़ डैड। नाथ की मृत्यु हो गयी पिछले हफ़्ते।

गुणवन्ती : आलो, बन्द कर दे यह संगीत।

आलोका : नहीं गुणो। उसे बजने दो। वह नहीं बजेगा तो भी क्या हो जायेगा ?

(संगीत तेज़ हो जाता है)

टिप्पणीकार : गुणवन्ती सहसा काँप उठती है अन्दर ही अन्दर। न वहाँ से हटती है न बैठती है। आलोका संगीत की लय पर, शून्य में देखती हुई, सफ़ेद सैण्डल में उससे भी उजले पैर से हल्के-हल्के थाप देती है। उन थोड़े से क्षणों में गुणवन्ती की स्मृति को रौंदता हुआ एक लम्बा इतिहास गुज़र जाता है—कॉलिज में गुणों और आलोका के एक साथ बीते दिन; फिर आलोका और माणिक की गहरी पहचान, माणिक और गुणवन्ती की शादी, और फिर एक लम्बा सन्देह, लेकिन सन्तोष भरा अन्तराल—अब क्यों आयी है आलोका ? विधवा हो जाने के बाद पॉप म्यूज़िक में तैरती हुई क्या चाहती है आलोका ?—यहीं क्यों आयी ?

(फ़ोन डायल करने की आवाज़)

गुणवन्ती : हलो—हाँ जी—माणिक साहब को फ़ोन देना—ओह अभी नहीं आये ?

(फिर फ़ोन डायल करने की आवाज़)

हलो—पसरीचा साहब—जी मैं गुणो बोल रही हूँ भाई साहब; ये हैं क्या वहाँ ? क्या ? तब फिर आपके ऑफ़िस में भी नहीं हैं। नहीं वैसे ही कुछ काम था—दुकान पर भी फ़ोन करके देखती हूँ। नमस्कार।

(फिर फ़ोन डायल करने की आवाज़)

हलो—मैं मिसेज़ माणिकलाल—साहब हैं ? नहीं—अच्छा—खैर कोई बात नहीं—हाँ आयें तो तुरन्त फ़ोन करिए—

(फिर फ़ोन डायल करने की आवाज़)

हलो—क्लब—मिस्टर माणिक—जरा देखिए क्लब रूम में होंगे—जी हाँ होल्ड कर रही हूँ—

(डायल करने और फ़ोन की घंटी की आवाज़)

गुणवन्ती . हलो—मिस्टर माणिक—हलो—माणिक साहब हैं ? हलो—मिस्टर माणिक देयर ? (**फ़ोन की घंटी और डायल करने की आवाज़ बढ़ती जाती है**)

टिप्पणीकार : मगर माणिक वहाँ कहीं नहीं था। जाने कैसा आतंक उस फ़ोन को सुनने के बाद उस पर हावी हुआ कि वह वहाँ से भाग निकला था। गाड़ी नहीं ली। टैक्सी से स्टेशन और फिर ट्रेन से मीलों दूर महावीरजी क्षेत्र के मंदिर की यात्रा पर चल पड़ा। बहुत धार्मिक नहीं था, लेकिन इसके अलावा अब और रास्ता भी क्या था ? भगवान मदद करेंगे—शायद और अब रास्ते का बाकी भाग वह पैदल दौड़ कर हाँफ कर तय कर रहा था—

(महावीर पूजा के स्वर सुनाई देते हैं)

सामूहिक स्वर:: श्री वीर महा-अतिवीर सन्मति नायक हो,
जय वर्धमान गुण-धीर, सन्मति दायक हो—

(घंटा ध्वनि)

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्धमान जिनराज जी,
मोहि राखो हो सरना—

माणिक : (**हाँफते हुए**) भगवान ! सोने का, माणिक का, हीरों का छत्तर चढ़ाऊँगा तुम्हें। इस संकट से उबार लो भगवान—इस बार बचा लो—

(महावीर-पूजा)

कातिक श्याम अमावस शिव तिय पावापुर तैं वरना।
गन-फनि-वृन्द जजैं तित बहु-विधि, मैं पूजूं भय हरना॥
नाथ मोहि राखो हो सरना।
श्री वर्धमान जिनराज जी मोहि राखो हो सरना॥

ओं ह्रीं कार्तिक कृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माणिक : महावीर-स्वामी, नयनपथ-गामी भवतु मे।
भगवान ! नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

(रुककर)

ये महावीर स्वामी ! कुण्डलपुर के राजकुमार ! मैं सोचता था इन्हें मैं माणिक—हीरे-जवाहरात का छत्तर चढ़ाऊँगा। हा ! हा ! हा ! अरे पगले मन ! वीतराग महावीर की यह तपे कुन्दन सी देह से चमकता सूरज का सा तेज—नाक पर टिकी ध्यान मुद्रा में समायी अंतर की गहराई—सच्चे दर्शन, ज्ञान और सच्चे चरित्र के योग से फूटती होठों पर मुस्कान—क्या कहानी कह रहे हैं—कहानी !—हाँ कहानी। गूँज रही हैं मंदिर की दीवारें—ध्वनि बिखर रही है मंदिर के शिखर से—कहानी सुनूं—

ध्वनि गूंज : ये—ये—हैं कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ के राजकुमार वर्धमान। धन, वैभव, हीरा और रतन जिससे तू लिपटा है, उससे लाखों-लाख गुने वैभव और धन को त्यागने वाले महावीर—

माणिक : और—मैं ! मैं भयभीत—आकुल—डरा—काँपता—भाग रहा हूँ—भागता फिर रहा हूँ—मेरी हविस—परिग्रह—परिग्रह—मुझे अपनी ही रस्सियों में जकड़ रहे हैं और मैं भाग रहा हूँ—अन्दर से बाहर! ओह यह मानस्तम्भ* भगवान के ऊँचे—ऊँचे उठते व्यक्तित्व का प्रतीक—लोट जाऊँ इसके तल में, चूम लूं इसका चरण-मूल। ओह ! मैं तुच्छ जीव—आकुल—आकुल—

---

* **मानस्तम्भ :** मंदिरों के आगे खुले आकाश के नीचे निर्मित, दूर से दिखाई देने वाला ऊँचा स्तम्भ। तीर्थंकर भगवान की प्रवचन सभा के सामने मानस्तम्भ हुआ करता था, जिसे नमस्कार करके प्रत्येक मनुष्य के मन में सहज श्रद्धा उत्पन्न होती थी और वह मान-अभिमान से रहित होकर तीर्थंकर का उपदेश सुनता था।

टिप्पणीकार : माणिक की चेतना में त्याग शब्द जैसे बोल उठने को हुआ—त्याग—अपरिग्रह—त्याग—अपरिग्रह—उसकी आँखों में लपक-झपक है दो रोशनियों की—एक तरफ़ भगवान का ज्ञान-ज्योति-पुञ्ज—दूसरी तरफ़ रुपये और मोहरों की चमक-दमक। एक तरफ़ ऊँचा और ऊँचा उठता चला जा रहा है मानस्तम्भ— दूसरी ओर धन की खानों में धँसता-गड़ता, बेड़ी कसे पाँवों से घिसटता वह माणिक नीचे—नीचे। और नीचे—वह हाथ-पैर फटकार कर—सिर को झटके से सीधा कर—छाती तान मानस्तम्भ को नमस्कार करने की मुद्रा में साष्टांग नत होने के लिए पूरे मनोयोग से तैयारी में था कि उसकी एकान्तता में चौंकाती हुई एक आवाज़ आयी।

विमल : अरे माणिक भाई, तुम यहाँ ? कब आये ? बता देते तो साथ ही आ जाते।

माणिक : मगर विमल तुम—

विमल : हाँ, मैं तो हर दूसरे महीने यहाँ भगवान के दर्शनों को आ जाता हूँ। शान्ति मिलती है।

माणिक : यहाँ—मेरा मतलब है तुम्हारे यहाँ तो—छोटे ने फ़ोन किया कि तुम्हारे यहाँ रेड हुई थी ?

विमल : रेड—मेरे यहाँ ?

माणिक : हाँ, और छोटे ने कहा तुम्हें अरैस्ट कर लिया गया है।

विमल : ओहो—(हँसी) माणिक भाई आ गये न उस बदमाश के चक्कर में। उस शरारती को जानते हो। फिर भी उसकी बातों में आ गये ?—मगर तुम कैसे यहाँ ?

माणिक : हद हो गयी। ज़िन्दगी भर असली नकली जवाहरात परखता रहा। पर छोटे का झूठ-सच न परख सका—उसका झूठ अपने को दग़ा दे गया। सच कहूँ मेरा तो बुरा हाल हो गया। सोचा आज तुम्हारे यहाँ रेड हुई कल मेरे यहाँ होगी। कुछ सूझा नहीं तो यहाँ आया। संस्कार समझो।

विमल : कमाल हो गया। चलोगे तो साथ ही—

माणिक : हाँ—चलूँगा ही—

(मंदिर की ध्वनियाँ)

(कार की आवाज। माणिक के घर पहुंचने पर)

माणिक (दूर से) विमल ! यार, ये अच्छी बात नहीं है। घर आकर इस तरह जा रहे हो—

गुणवन्ती : (अन्दर से) अरे ये तो आ गये—अरे मीता !—सुरेश ! देख पापा आ गये—

विमल : (दूर पर) जल्दी न होती तो जरूर रुकता। अच्छा माणिक भाई नमस्कार। **(कार के स्टार्ट होने की आवाज)**

माणिक : (दूर पर) नमस्कार।

विमल : जरा होशियारी से घर में घुसना, कहीं हथकड़ी वाले बैठे हों— **(हँसी) (कार चली जाती है)**

माणिक : और गुणो—वो—बात ये है—सुनो, पंचू को कहो नाश्ता लगाये, भूख लगी है।

गुणवन्ती : आप थे कहाँ ?

माणिक : अरे वो—कहीं नहीं, बस जरा महावीरजी तक गया था ?

गुणवन्ती : क्या ? महावीरजी ? तो मुझे क्यों नहीं बताया ?

माणिक : बस—वो—वो—यों ही। बात ये है—हाँ—विमल भी तो पहुँचा था—गुणो नाश्ता लगवाओ न !

गुणवन्ती : नाश्ता लगवाती हूँ। मैं कह रही हूँ महावीरजी की यात्रा का कुछ फल तो लगे हाथ ही मिल गया।

माणिक : क्या ?

गुणवन्ती : आलोका आयी है।

माणिक : और

गुणवन्ती : (थोड़ा आहिस्ता से) उसके हस्बैण्ड की डैथ हो गयी।

माणिक : क्या ? पशुपतिनाथ की मृत्यु हो गयी ?

गुणवन्ती : (जाते हुए) मैं नाश्ता लगवाती हूँ। आलो मीता के कमरे में है, गाने सुन रही है।

माणिक : (बिलकुल डूबी, स्वगत आवाज) आलोका—

आलोका : ओ हलो, आप—नमस्कार—आप कब आये ?

माणिक : नमस्कार। कब आयीं आप ?

आलोका : कल। मगर आप कहाँ चले गये थे ? गुणो इतनी परेशान थी—

माणिक : मैंने सुना मिस्टर नाथ का—

आलोका : नहीं रहे।

माणिक : आइ एम सॉरी

आलोका : **(थोड़ा संयत स्वर)** बिना बताये क्यों चले गये ? सारा घर परेशान हो गया।

माणिक : अँ—हाँ। अकेले आयी हो ?

आलोका : अकेले मतलब ?

माणिक : यानी बच्चे वगैरह ?

आलोका : **(हल्की हँसी)** बच्चे हुए नहीं। आपको ताज्जुब नहीं हुआ मैं कैसे आ गयी ?

माणिक : नहीं, ताज्जुब क्या। अच्छा हुआ आ गयी। मन बदलेगा।

आलोका : सचमुच तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ ?

माणिक : हाँ···थोड़ा सा ज़रूर हुआ। मगर अच्छा लगा, अच्छा आप बैठिए मैं ज़रा नहा लेना चाहता हूँ। आप बैठिए, मैं अभी आता हूँ।

टिप्पणीकार : आलोका ने देखा और महसूस भी किया कि माणिक सहज नहीं है। था भी, तो अब नहीं रहा। हल्के से आहत हो आयी आलोका। उसके यहाँ आने का शायद वह अर्थ नहीं जो माणिक ने समझा या जो गुणवन्ती समझ रही है। एक बहुत बड़े मकान में पशुपतिनाथ की मृत्यु के बाद वह जैसे बिल्कुल असहाय और अकेली हो उठी थी। मित्र थे, वह सारी चमकदार, खनकती हुई दुनिया थी, सिर्फ बूढ़े पशुपतिनाथ नहीं थे। उनकी मृत्यु से यह सब हुआ, ऐसा भी नहीं। पशुपतिनाथ उसके लिए पहले भी न होने के बराबर ही थे। नाथ की मृत्यु पर वह रो नहीं सकी थी लेकिन उसके मित्रों ने यह क्यों सोच लिया कि वह उतनी आसानी से हँस सकेगी उस दिन—

(एक पूर्व-घटना की आवृत्ति (फ़्लैश बैक) आधुनिक संगीत।)

आलोका : हाऊ डेयर यू पॉल, अब चले जाओ यहाँ से। नाथ मर गये तुम समझते हो—तुम—हाऊ डेयर यू—यू गेट आउट—आउट—गेट आउट। और अब कभी मत आना—कभी नहीं—आउट। ***(हाँफती है। किसी चीज को फ़ेंक कर तोड़ती है। संगीत रुक जाता है। पॉल चला जाता है)***

आलोका : (अपने आप से) गेट आउट। आउट—गेट आउट—गेट आउट
(आवाज़ कम होती जाती है)

टिप्पणीकार : आलोका, भोग-विलास के सब आयामों में सिर से पैर तक डूबी हुई एक कमज़ोर इन्सान। लेकिन उस दिन अचानक उद्विग्न हो उठी थी। उसे लगा चाहे वह पॉल हो या राजन। रेसकोर्स में वर्मा का साथ हो; या गुलमर्ग में गोल्फ़ पार्टी, हर कुछ उसे छोटा करता गया है; उसे समर्पण की एक अन्तहीन नियति में बदलता गया है और उस दिन पॉल और पॉल के साथ की उस समूची दुनिया को दरवाज़े के बाहर धकेल कर आलोका दयनीय हो आयी थी। और तब वह वहाँ से चल पड़ी थी। उसने फैसला कुछ नहीं किया था, बस उस परिवेश से बाहर आजाना चाहती थी। सारी जगहें छोड़-कर वह माणिक के यहाँ ही क्यों आयी, यह तो वह खुद भी नहीं जानती थी। मगर एक दर्द महसूस हो रहा था उसे यह जान कर कि न सिर्फ गुणो बल्कि माणिक से भी वह साफ-साफ कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं थी।

माणिक : किसका फ़ोन आ गया। एक मिनट—हलो माणिक हियर—बोर्ड की मीटिंग कैसे पोस्पोन्ड होगी भाई। न—न—करने दो—वैसे एक बात बताऊँ—अब मैं खुद भी इनटरेस्टेड नहीं हूँ। उन्हें ही चेयरमैन बन जाने दो—छोड़ो यार—नहीं। न—अच्छी बात है। कल सुबह बात करूँगा। नमस्कार।

(फ़ोन रखता है)

आलोका : एक बात पूछूँ—

माणिक : हूँ

आलोका : और तमाम जगहें छोड़कर तुम महावीरजी क्यों गये थे ?

माणिक : मतलब ?

आलोका : मेरा मतलब है···

माणिक : मैं इतना धार्मिक कब से हो गया ?

आलोका : हाँ यही समझ लो।

माणिक : इसमें धार्मिक होने न होने का सवाल नहीं। एक उलझन थी, लगा वहाँ कुछ चैन मिलेगा।

आलोका : मिला ?

माणिक : पता नहीं।

आलोका : फिर कब जाओगे ?

माणिक : कह नहीं सकता।

आलोका : मैं भी जाना चाहूँगी।

माणिक : ऐसी क्या बात है ?

आलोका : तुम गये थे तब क्या बात थी ?

गुणवन्ती : (प्रवेश) सुनिए—अरे सुनिए—ओह

आलोका : आओ गुणो बैठो।

गुणवन्ती : बैठने का वक्त नहीं है। मुनि कीर्ति महाराज आहार को निकले हैं—चलो द्वार पर खड़े हों।

माणिक : ओ हो! —महाराज के आहार पर निकलने का समय हो गया—चलता हूँ—आलोका तुम—

गुणवन्ती : आलो तुम भी आओ—महाराज के दर्शन करो—

आलोका : मैं दर्शन ? पर तुम दोनों ही जाओ न ? मैं वहाँ—ठीक रहेगा क्या ?

गुणवन्ती : ठीक क्यों नहीं रहेगा ? क्या पता तुम्हारे ही भाग्य से आज महाराज हमारे यहाँ आहार पानी ग्रहण कर लें—

माणिक : (स्वाभाविक उत्साह से जो फिर जरा संभलकर बोलने में बदल जाता है) अरे हाँ! तुम जरूर चलो—और नहीं तो यह हाथ में धरे काजू के दाने ही लेकर (बदला स्वर) पर मैं गुणो—! तुम क्या ?—

गुणवन्ती : (तनिक अप्रतिभ सी) मैं तो खुद यही कह रही हूँ—इधर कई दिन से निराहार हैं महाराज—

माणिक : हमारे यहाँ से आहार लिये भी तो काफ़ी दिन हो गये—

गुणवन्ती : ओ हो! जल्दी चलो—आलो! उठ झटपट! न जाने क्या अभिग्रह मन में ठाना है महाराज ने ? मन में क्या सोच रखा है ? तीन दिन से आहार ग्रहण नहीं किया है—लो बस हो! ऐसे ही खड़े हो जाते हैं तीनों जनें—मैं हाथ में पानी का लोटा ले लेती हूँ, तुम यह थाली लो—और तू बस ऐसे ही जैसी है—

(संगीत का अन्तराल)

माणिक और गु० : नमोस्तु स्वामी, नमोस्तु स्वामी, नमोस्तु स्वामी, तिष्ठिए, तिष्ठिए, कृतार्थ हुए महाराज हम—चरण रज दीजिए भगवन् !

(गुणवन्ती, मुनि महाराज के साथ आये उनके अनुयायी और श्रावकों की बातचीत के स्वर सुनाई देते हुए)

स्वर १ : लो—आज महाराज ने तीन दिन बाद उपवास तोड़ा—

स्वर २ : ये कौन है स्त्री गुणवन्तीजी के साथ ?—उसके हाथ से काजू के दाने स्वीकार किये महाराज ने—

स्वर ३ : लो आहार ले चुके महाराज—साथ वाले कमरे में बैठो सब—महाराज कुछ देर वहाँ बैठेंगे—धर्म वार्तालाप सुनोगे न ?

(महाराज कमरे में आसीन होते हैं)

मुनि : कहो माणिक ! इधर बैठो गुणवन्ती—बच्चे कहाँ हैं ?—

गुणवन्ती : बच्चे तो—

मुनि : **(किंचित् हँसकर)** अच्छा। खुश हो लेने दो। आधुनिक हैं। रहेंगे। रहने दो। अरे ये—

माणिक : ये—

गुणवन्ती : ये मेरी बचपन की मित्र है आलोका, बम्बई से आयी है।

माणिक : पापुलर टैक्सटाइल्स के पशुपतिनाथ थे न, उनकी पत्नी हैं। नाथ साहब पिछले हफ़्ते नहीं रहे।

मुनि : पशुपतिनाथ—नाम सुपरिचित है।—ये उनकी पत्नी हैं।—ठीक—

आलोका : पुनः प्रणाम स्वीकर कीजिए।

मुनि : धर्मलाभ हो। सहनशील है ये जीवात्मा। जितना तपेगी उतनी निखरेगी—पुण्य का उदय होगा—

आलोका : धन्य-धन्य महाराज—मैं अभागिन तिरूँगी क्या कभी ?

मुनि : तिरोगी। तिराने वाला ही तीर्थंकर कहलाता है। तीर्थंकर महावीर ने कहा है—संयम करो, इन्द्रियों को वश में करो, इससे कर्म आत्मा को बाँधेंगे नहीं, बँधे हुए कर्मों का क्षय होगा—और वही मोक्ष है—अमर सुख में लीन आत्मा। गुणवन्ती इन्हें प्रवचन सभा में ले आया करो—माणिक बाबू, महावीर-वाणी की एक प्रति इन्हें दे देना—कभी-कभी पढ़ लिया करें—

('नमोस्तु'—'जय कीर्ति महाराज' की हल्की ध्वनियाँ)

(अन्तराल)

गुणवन्ती : क्या समा बना है महाराज के पधारने से—धन्यभाग्य। (**स्वगत**) क्या था महाराज का अभिग्रह ?—क्या उन्होंने सोचा था कि वह ऐसी स्त्री को देखकर भोजन करेंगे जिसके चेहरे पर अपने पति की मृत्यु का भी विषाद न हो—जिसके हाथ में काजू के दाने हों—जो अपना घर-बार छोड़ कर किन्हीं अंतरंग धागों से खिंची महावीर भगवान के श्रद्धालु पति-पत्नी के पास आने को बेबस हो गयी हो—अरे क्या आलोका चन्दना हो गयी ?—उहूं क्या बात मन में आ रही है—आलोका चन्दना नहीं हो सकती—तो क्या मैं चन्दना ? पर मैं कैसे ? मैं कहाँ हूँ उतनी संतप्त—जितनी आलोका, विचित्र है मेरे मन की रचना ! कोई भी विचार से उपजा विषाद मन में गहरे नहीं उतरता। एक बाल-सा पड़ता है मन के शीशे पर जो अगले क्षण किसी मंत्र की फूंक से मिट जाता है।—हूं 'आलोका' ? 'आलोका' कहीं कमजोर—कहीं अत्यन्त दृढ़। वह मुझे भी प्यार करती है और माणिक को भी—कैसी टीस सी उठी यह कलेजे में—पर न—न—न—न—न उठने दूंगी इस टीस को—कहीं आलोका को इसका भास भी हो गया तो उसे कितनी चोट पहुँचेगी ? बिचारी आलो ! असहाय—निराश्रय। भटकती—भटकती।—उसे मनोबल चाहिए—मनोबल। उसे अपने को पहचानने की दूसरी दृष्टि दूं। जल्दी—दे सकूंगी ? (**प्रकट में**) —अरी आलो !—आज तेरे कारण महाराज का आहार सध गया अपने यहाँ। अपने भाग की सराहना कर। एक बहुत बड़ा काम हुआ है तेरे हाथों—तुझे चन्दना की कहानी याद है ? क्यों जी ! तुम्हारी तो बड़ी बातें होती थीं आलोका से। बतायी थी कभी चन्दना की कहानी। अरे आलो ! अरे सब लोग गंभीर हो गये—आलो तो बिल्कुल ही गुमसुम हो गयी, मैं कह रही हूँ कि क्या तुझे चन्दना की कहानी याद है ?

माणिक : अरे आलो—कहाँ जा रही हो—आलो (**दृश्य स्थानान्तर**)

आलोका : (**स्वगत**) आलोका—चन्दना—चन्दना—आलोका—आलोका—चन्दना—कहाँ वह महासती शीलवती और कहाँ मैं जिसने शरीर के सहज धर्म को ही धर्म समझा ! पर जो भी हो—वह संतप्त थी और मैं भी संतप्त हूँ—उसका रूप उसका बैरी बना और मेरा

शरीर मेरा···मैं ग्लानि और संताप से छटपटा रही हूँ—मैं बहुत व्याकुल हूँ। वह भी व्याकुल थी—मैं बेचैन हूँ—छटपटा रही हूँ—भगवन्, भगवन्···

(आलोका की आवाज बढ़कर धीरे-धीरे 'फ्लैश बैक' में सम्मिलित हो जाती है। ढोल पीटने की आवाज)

स्वर १ : श्रेष्ठियो, व्यापारियो, हीरे-जवाहरात के पारखियो, आओ-आओ—श्रीमन् इस बाजार की बहुमूल्य चीज को देखिए श्रीमन्, देखिए—इस जैसी सुन्दरी दासी दूसरी नहीं मिलेगी।

(लोगों की आवाज)

स्वर १ : देखिए श्रीमन्, आइए, बहुमूल्य सुन्दरी दासी मिट्टी के भाव खरीदिए। हाँ—हाँ आइए श्रेष्ठि, आइए—आगे आइए—

श्रेष्ठी : हूँ लड़की अच्छी है—क्या नाम है तुम्हारा?

स्वर १ : ऐ लड़की बोल—नाम बता—चिन्ता मत कीजिए श्रीमन्, यह कुमारी है और सुशील भी।

श्रेष्ठी : क्या नाम है तुम्हारा—

चन्दना : चन्दना।

श्रेष्ठी : हूँ चन्दना। सुना व्यापारी, इन सभी दासियों में यह एक ठीक है।

स्वर १ : क्या बात है श्रीमन्! आपने हीरा चुना है, हीरा। मान्यवर, इसका मूल्य तो बहुत ही कम है—बस केवल पाँच सहस्र मुद्राएँ—

श्रेष्ठी : पाँच? नहीं दो सहस्र—

स्वर १ : जी देखिए, इससे कम नहीं होगा श्रीमन्, किन्तु आप कहते हैं तो साढ़े चार सहस्र दे दें।

श्रेष्ठी : नहीं, ढाई सहस्र मुद्राएँ—

स्वर १ : चलिए चार सहस्र।

चन्दना (स्वगत) : हे प्रभु, अभी और क्या क्या दिन देखने होंगे वैशाली की राजपुत्री को, सुन्दरता के नाग ने जिसे डस लिया। ओह कैसा अशुभ था वह दिन जब मैं उद्यान में थी और मनोवेग विद्याधर मुझ पर मोहित हुआ था। पत्नी से घबरा कर वह मुझे जंगल में छोड़ गया जहाँ मैं भीलों के एक कबीले से दूसरे कबीले गयी। एक बार मुक्ति के लिए छटपटा कर भाग निकली लेकिन दुबारा पकड़ी गयी। अब यहाँ दासी के रूप में बाजार में बिकने पहुँचा दी गयी। ओ प्रभु, यह कैसी परीक्षा है—

(शोर और सौदेबाजी)

स्वर १ : ना जी ना। साढ़े तीन सहस्र मुद्राओं से एक भी कम नहीं श्रीमान् !

श्रेष्ठी : अच्छी बात है।···सूत !

सूत : आज्ञा श्रीमान् !

श्रेष्ठी : व्यापारी महोदय को साढे तीन सहस्र मुद्राएँ गिन दो और इस दासी को रथ पर ले चलो—

सूत : जैसी आज्ञा श्रीमान् !···लो, महोदय—(मुद्राओं की खनक) एक—दो—तीन—चार—पाँच—छह—सात—आठ—नौ—दस—ग्यारह—बारह—(गिनने का स्वर और लोगों का शोर)

(दृश्य-अन्तराल)

(रथ की आवाज। रथ रुकता है)

सूत : लीजिए श्रीमान्, हवेली आ गयी। रथ अभी तैयार रखूँ देव, आप अभी वापस वैशाली जायेंगे न ?

श्रेष्ठी : हाँ सूत। और तुम्हारी स्वामिनी तो यहीं है, उद्यान में—

श्रेष्ठि-पत्नी : आप बड़ी जल्दी आ गये ?

श्रेष्ठी : नहीं देवी, अभी तुरन्त वापस जाना है। तुम्हारे लिए एक भेंट लाया हूँ। एक दासी बिक रही थी। सोचा तुम्हारी सेवा करेगी—

पत्नी : ओह मेरी सेवा के लिए इसे लाये हो ? देखूँ जरा—ऐ लड़की अपना चेहरा इधर कर। हूँ, यह चन्द्रवदनी सुवर्णवल्लरी मेरी सेवा के लिए लाये हो।

श्रेष्ठी : हाँ देवि ! इसे काम दो। अच्छा मैं चला। बेटी ! यह है तुम्हारी स्वामिनी। चलो सूत, रथ बढ़ाओ।

पत्नी : हूँ—ये सुन्दरी मेरे लिए लाये हैं। हुंह। देख रही हूँ, अब ज्यादा ही आगे बढ़ने लगे हैं। हुंः मेरे लिए लाये हैं। मुझे भोला समझते हैं। क्यों री, तू दासी है—हूँ तुझे भी देखती हूँ। कैसी सीधी-सादी बनी खड़ी है— अरी, मालिनी—वेत्रवती—कहाँ हो तुम सब—सेवक से कहो एक नाई और एक लोहार को उपस्थित होने को कहे तुरन्त !

(अन्तराल। चन्दना की सिसकियाँ)

पत्नी : अरी, आँसू क्या बहाती है—चन्दना के रूप में नागिन बनकर मेरी गृहस्थी डसने आयी थी, ऐसे ही छोड़ दूँगी तुझे ? (दासी के साथ

नापित और लोहार का प्रवेश) नापित ! अपने छुरे से घोट दो इसका सिर—ऐसी बदसूरत कर दो कि पशु भी इसकी ओर न देखे और लोहकार खड़े-खड़े मुंह क्या देख रहे हो—लगाओ इसके पैर में लोहे की बेड़ियाँ— (**लड़की की सिसकियाँ और लोहे को ठोकने की आवाज़**) हूं ठीक है—यह हुआ। ला वो सूप इधर दे—सूप में कोदों देकर इसे घर से बाहर निकालूंगी—

चन्दना : देवि, मुझ पर दया करें—मुझे यहीं चरणों में पड़ी रहने दें—

पत्नी : अरी हट। निकल बाहर, निकल—निकल—

(**सिसकियों के साथ—भीड़ का शोर और नारे—"भगवान महावीर की जय," "सन्मति वर्धमान की जय", "जिनधर्म की जय"**)

श्रेष्ठि पत्नी : धन्य भाग्य—भगवान इधर पधारे—आज भगवान निश्चय ही मेरे हाथ से अन्न ग्रहण करेंगे—लाऊं। प्रस्तुत करूँ। अरी कुलक्षणी, हट द्वार से—

(**चन्दना आहत और मौन। लोगों के नारे**)

टिप्पणीकार : अरे यह मैं क्या देख रहा हूँ—भगवान महावीर स्वामी—अरे यह भगवान उसी दासी कीओर देख रहे हैं—श्रेष्ठि-पत्नी पकवानों के थाल लिये खड़ी है लेकिन उन्होंने उसके वहां होने पर ध्यान भी नहीं दिया—वे दासी चन्दना की ओर बढ़ गये। दासी ने आँसू भरे चेहरे को उठा कर एक बार उनकी ओर देखा और बेड़ियों वाले पाँव घसीट कर उनके पैरों पर झुक गयी। लो भगवान ने उसके कोदों के दाने स्वीकार कर लिये—

(**दृश्य-परिवर्तन**)

(**फ़ोन की घंटी**)

गुणवन्ती : हलो—यस—माणिक साहब को दूँ फोन—कौन साहब बोल रहे हैं ? ओह जी हाँ आलोका है यहाँ—कौन साहब बोल रहे हैं ? ठीक है मैं बोलती हूँ—आप होल्ड करिए—अरे आलो—आलो—आलो, तुम्हारा फ़ोन—

आलोका : मेरा फ़ोन ? कौन है ?

गुणवन्ती : पता नहीं। नाम पूछा मगर बताया ही नहीं। तुम्हारी रट लगाये है—

आलोका : ओह (फ़ोन पर) हलो—आलोका—ओह। तुम्हें यहाँ का पता किसने दिया ? हूँ—हूँ—हूँ—सॉरी ! बिज़ी हूँ। और हाँ, यहाँ एक जरूरी काम से आयी हूँ। मुझे आगे से डिस्टर्ब मत करना। ऐसा ही समझ लो। बाई।

(फ़ोन रखती है)

गुणवन्ती : बहुत नाराज़ हो ?

आलोका : (कोई उत्तर नहीं)

गुणवन्ती : कौन था ?

आलोका : सॉरी गुणो, बट, बट आई एम सिक आफ़ इट।

गुणवन्ती : और—अच्छा आलोका—मैं जरा मंदिर हो आऊँ। तू तो परेशान है वरना कहती तू भी चल।

आलोका : हूँ। मगर गुणो मंदिर में परेशान व्यक्ति को जगह नहीं होती ?

गुणवन्ती : अरे तू तो बुरा मान गयी। क्या करेगी वहाँ जाकर। बोर हो जायेगी। और फिर वो साहब शायद दुबारा फ़ोन करें—

आलोका : गुणो !

गुणवन्ती : तू बस एकदम बच्ची है। चल उठ मन्दिर चलते हैं। आजा—

आलोका : नहीं गुणो, तुम जाओ।

गुणवन्ती : बुरा मान गयी ? ले माफी माँग लेती हूँ बस—

आलोका : अरे क्या करती हो ! गुणो सच कहती हूँ, आज तक मंदिर नहीं गयी—अब जाकर करूँगी भी क्या। प्लीज तुम जाओ।

गुणवन्ती : अच्छा जैसी तुम्हारी मरजी। मैं कोई दो घंटे में आऊँगी। मिसेज मेहता का फ़ोन आयेगा शायद— **(फ़ोन बजता है। फ़ोन उठाकर हैंडिल पर पटखने की आवाज़। फ़ोन की घंटी दुबारा। घंटी ईको करती है जैसे आलोका के दिमाग में विस्फ़ोट हो जाएगा।)**

आलोका : (क्रोध में) आई से यू शटअप। और अब कभी मुझे फ़ोन मत करना—ओह—आई एम सॉरी—माणिक, तुम हो—मैं—आई एम सॉरी—माणिक बात ये है—नहीं—नहीं—लेकिन गुणो अभी मन्दिर में गयी है—तुम ऑफिस में रुको—वो खुद तुम्हें लेती आयेगी—ओह—अच्छा— **(फ़ोन रखती है। गाड़ी रुकना। दरवाज़ा खुलना, बन्द होना।)**

(दृश्य-अंतराल)

माणिक : (प्रवेश) क्या बात है आलोका ?

आलोका : नहीं कुछ भी तो नहीं। आप कॉफ़ी लेंगे। मैं—

माणिक : नहीं आलो, कुछ नहीं लूंगा। बैठो। क्या हुआ, बहुत परेशान लग रही हो।

आलोका : (उत्तर नहीं देती)

माणिक : बैठ जाओ न, आलो। सच कहूँ आज मैं खुद भी अपने आपको गिल्टी महसूस कर रहा था। देखो न, इतने दिन बाद हम लोग मिले और ढंग से दो बातें भी नहीं कर सके।

आलोका : हो जाता है। समय के साथ व्यस्तताएँ भी बढ़ जाती हैं।

माणिक : लेकिन ऐसी भी क्या व्यस्तता। और आलो सच कहो, हम लोग क्या इतना बदल गये हैं ?

आलोका : शायद।

माणिक : ऐसी भी बात है आलो ! याद है एक बार हमने एक दूसरे को आश्वासन दिये थे कि हम कभी नहीं बदलेंगे।

आलोका : बचपन अजीब ही होता है।

माणिक : उसे बचपना कहती हो ?

आलोका : (उत्तर नहीं देती)

माणिक : आलो, क्या सचमुच तुमने वे दिन बचपना समझ कर छोटे हो गये कपड़ों की तरह उतार दिये ?

आलोका : आप आज इतनी जल्दी कैसे आ गये ? आपकी तो मीटिंग थी कोई इस वक्त ?

माणिक : मीटिंग—हाँ। थी। तुम्हें कैसे पता ?

आलोका : गुणो मन्दिर जाने को कह रही थी तो तुमने कहा तुम मीटिंग में होगे।

माणिक : मीटिंग कोई खास नहीं थी।

आलोका : ताज्जुब है !

माणिक : क्या ? आलो बात पूछूं। लगता है जब से तुम आयी हो सहज नहीं हो।

आलोका : हाँ। नहीं हूँ।

माणिक : लेकिन क्यों, आलो ?

आलोका : पशुपतिनाथ को जानते हो ?

माणिक : हाँ। मगर—

आलोका : हफ़्ते पहले वे मर गये। यू नो ह्वाट इट मीन्स ? आइ एम ए विडो—

माणिक : लेकिन—

आलोका : हाँ तुम सोचते होगे मैं कितनी खुश हूँ। है न ?

माणिक : (जवाब नहीं देता)

आलोका : मैं पॉप म्यूजिक जो सुनती हूँ। प्रेमियों से घिरी हुई मेरी जैसी औरत के लिए तो अच्छा ही हुआ—पशुपतिनाथ नाम की बाधा हट गयी। है ना ?

माणिक : मैं माफ़ी चाहता हूँ आलो, मेरा यह मतलब नहीं था। उफ्—गर्मी कितनी होने लगी है—नौकर से कहो कुछ ठण्ठा निकाल दे।

आलोका : एक बात कहूँ माणिक ! मन्दिर जाने के लिए तो मीटिंग थी लेकिन अब मीटिंग नहीं है। क्यों ?

माणिक : (जवाब नहीं देता)

आलोका : पॉप म्यूजिक खींच लाया ?

माणिक : आलो मुझे अफसोस है, लेकिन कहूँगा—अब जरूर कहूँगा—यह सच है कि मैं तुम्हारे लिए आया था—लेकिन—

आलोका : क्या लेकिन ?

माणिक : यह मत सोचो कि मैं यहाँ कोई और नीयत लेकर आया था।

आलोका : फिर ?

माणिक : छोड़ो।

आलोका : अच्छी बात है। ठण्डा पियोगे न—

माणिक : मैं नहीं जानता लेकिन मन में कहीं सिर्फ इतनी सी बात थी कि इस घुटन भरी यांत्रिक जिन्दगी में तुमसे बात करूँगा—शायद कुछ नयी हवा आयेगी।

आलोका : नयी हवा ? हाँ (किंचित् हँसी) नयी हवा। माणिक ! आदमी साफ बात क्यों नहीं करते ?

माणिक : क्या मतलब ?

आलोका : तुम और तुम जैसा इस दुनिया का हर माणिक सिर्फ एक ही चीज चाहता है—औरत का शरीर—चाहे झूठ बोल कर, चाहे किसी और तरह।

माणिक : (लगभग चीखकर) आलोका, क्या बक रही हो ? इतनी कड़वाहट की वजह ?

आलोका : कोई वजह नहीं है। (टूटकर रो पड़ती है) कोई वजह नहीं माणिक—

माणिक : आलो·····

आलोका : बस माणिक और नहीं—लीव मी एलोन—लीव मी—

(अन्तराल)

टिप्पणीकार : माणिक चुपचाप उठ जाता है। घुटती हुई आलोका देर तक ज्यों की त्यों बैठी रह जाती है। मन कहीं गहरी तिलमिलाहट में डूबा—उसने नहीं चाहा था कि संवाद इस तरह टूट जाय। लेकिन आलोका को धीरे-धीरे एक अजीब एहसास होने लगा है—जैसे एक निरा पशु है उसका अस्तित्व और चारों ओर से एक आदिम परिवेश ने उसे घेर लिया है। वे सब नाच रहे हैं उसके आस-पास चीखें मारते हुए। उसके सामने रखा टेलीफ़ोन धीरे-धीरे आकार बदल रहा है। यही है वह टेलीफ़ोन जिसकी आवाज़ें सुनने के लिए वह बेचैन रहती थी—आज लगता है वह एक बलि-वेदी है और गर्दन लटका कर माउथ-पीस की जगह लेटी हुई है कब होगी मुक्ति ? कैसे होगी ?

(फ़ोन की घंटी। धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। फेड अण्डर)

स्वर १ : हलो, मिसेज़ नाथ देयर ?

स्वर २ : हलो, मे आई टाक टु मिसेज़ आलोका पशुपतिनाथ ?

स्वर ३ : हलो आलो ! हलो—

स्वर ४ : हलो—आलोका—मैं हूँ—हलो—

(फ़ोन की घंटी की गूंज)

आलोका : नहीं—नहीं—अब और नहीं। मुझे मुक्ति दो मैं हाथ जोड़ती हूँ।

(घंटी का विस्फोट धीरे-धीरे शान्त)

टिप्पणीकार : मुक्ति—हाँ मुक्ति। ठीक ऐसा ही था। एक समूचा युग—ठीक आलोका जैसा उद्विग्न, अशान्त, घबराया हुआ और कर्मकाण्डों की वेदी पर बलि के लिए अपने कन्धे झुकाए—

(दृश्य अन्तराल)

(मंत्र पाठ)

स्वर : १ जरा हटो न भाई, यज्ञ मुझे भी देखने दो—

स्वर : २ हां हां तो ठीक है। देखो। मना कौन करता है।

स्वर : ३ क्यों भाई वो दाहिनी तरफ बलि वेदी है न। वहीं तो यज्ञ के घोड़े की बलि दी जायेगी। बहुत दिन बाद यह दृश्य देखने को मिलेगा। मगर यज्ञ का घोड़ा है कहाँ ?

स्वर : ४ अरे चुप देखो न। बड़बड़ किये जा रहे हो। घोड़ा अभी कहाँ है। आयेगा। विजय पूरी करके आयेगा।

(फ्लैश अप, मंत्र-पाठ)

स्वर : महारूपण्य: बाजिन:, सम्भवम्; वृद्धिन: यशस्तुतो राजन्य:, पर्जन्य: स्वस्ति न: समुद्भूति।

पुरोहित : महाराज की जय। देव ! दो हजार गाँव आपके अधीन हुए। महाराज सम्राट् पद को सुशोभित करें। पवित्र अश्व आने वाला है। आहुति के लिए तैयार हों देव—

('मंगल वाद्य'। घोड़े के आने की टापें। हिनहिनाहट)

स्वर १ : लो वो आ गया यज्ञ का घोड़ा।

स्वर २ : पागल हुए हो क्या। वो तो कोई घुड़सवार आया है।

स्वर ३ : (दूर से ऊँचे स्वर में) महाराजाधिराज की जय हो। महाराज अनर्थ हो गया—

पुरोहित : क्या हुआ दूत ? इस तरह यज्ञ के बीच विघ्न क्यों डाल रहे हो ?

दूत : देव अनर्थ हो गया। कुछ लोग यज्ञ के विजयी अश्व को लेकर कहीं भाग गये।

पुरोहित : ओह ! अनर्थ, घोर अनर्थ। महाराज आप ऐसे बैठे हैं। यह घोर अमंगल घटना है। हे प्रभो ! अब क्या होगा ? प्रजा पर घोर विपत्तियां आयेंगी (मंगल सूचक वाद्य) अरे ये मंगल वाद्य कैसे बज रहे हैं ? महाराज आप शान्त क्यों हैं ?—मैं कहता हूँ कि अब भयंकर दिन आने वाले हैं—हे प्रभु रक्षा करो—रक्षा करो।

(मंगल-वाद्य)

स्वर १ : हे भगवान यह तो बहुत बुरा हुआ। न जाने क्या विपत्ति आयेगी—अकाल पड़े या सूखा, जाने क्या हो—

स्वर २ : अरे मूर्ख ! कुछ नहीं होने का। अच्छा हुआ एक बे-ज़बान पशु की मुक्ति तो हुई। बल्कि मैंने तो सुना है महाराज स्वयं इस हिंसा से ऊब गये थे—

('मंगल-वाद्य'। घोड़े के हिनहिनाने की आवाज़ बढ़ती जाती है)

टिप्पणीकार : बलि-पशु छटपटाता है आलोका के अन्दर। मुक्ति, कहाँ मिलेगी मुक्ति ? गुणो समझती है वह आलोका जैसी औरत के लिए नहीं है। क्या सचमुच उसके लिए मुक्ति नहीं है ?

(फोन की घंटी)

माणिक : हलो—हलो—माणिक हियर—हलो—आलोका—हलो—हलो आलोका—**(फ़ोन रख देती है)**

आलोका **(स्वगत)** : नहीं—बस करो अब। कितने बदल गये हो तुम भी माणिक। उफ्! सब कुछ कितना बदल गया है। माणिक याद है कभी तुमने कहा था—सभ्यता के इतिहास में कोई ऐसा भी हुआ था जिसने बलि-वेदी पर कंधे झुकाए मानव की मुक्ति खोज ली थी—तुम्हीं ने बताया था माणिक—तुम्हारी वह आस्था कहाँ है ? माणिक की तलाश में आयी थी—कहाँ है युवा दिनों का वह माणिक—

(पूर्वघटित दृश्य। फ़्लैश बैक)

आलोका : क्यों, आज इतने चुप क्यों हो ? बड़ी देर भी कर दी। आसमान ऐसा हो रहा है कि आँधी न आ जाए !

माणिक : कुछ नहीं आलो, हाँ, सुनो तुम आज के हिस्ट्री के नोट्स मुझे दे देना—

आलोका : हाँ, तुम हिस्ट्री के पीरियड में थे कहाँ ?

माणिक : पता नहीं। मुझे लगा, यह इतिहास झूठा है। मैं घर पर बैठा रह गया।

आलोका : अरे चलो नोट्स ले लेना। बहुत सोच रहे थे ?

माणिक : पता नहीं, ज्यादा कुछ सोच तो नहीं रहा था लेकिन एक अजीब एहसास हो रहा था—तुम्हें याद है पिछले लेक्चर में प्रोफेसर सिंह ने एक घटना कितनी आसानी में सुना दी थी—घोर तपस्या के बाद भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया। घोर तपस्या—यह एक शब्द भर है—क्या तुम बोर हो रही हो ?

आलोका : नहीं माणिक, तुम कभी-कभी ही इस तरह बोलते हो। और बोलते हो तो बहुत अच्छा लगता है।

माणिक : प्रोफेसर सिंह ने बेहद आसानी के साथ जिन शब्दों को बोल दिया था वह क्या है—सोचो तो थर्राहट महसूस होती है। याद है तुम्हें—परसों बोटेनिकल गार्डेन जाते वक़्त मेरी मोटरबाइक खराब हो गयी थी। धूप में आधा घंटा उसे घसीटते हुए पैदल चले होंगे हम और गार्डेन में उस दिन पानी भी नहीं था। किस क़दर छट-पटाये हम लोग ? और फिर उस दिन कहाँ चला गया हमारा सारा रोमांस ?

आलोका : बाप रे, उस दिन तो लगा था प्राण ही निकल जायेंगे।

माणिक : और सोचो जरा, कोई महीनों, बरसों ऐसी—बल्कि इससे भी ज्यादा दुर्गम यात्रा करे—तपे, तब क्या होगा वह व्यक्तित्व ? और क्या होगी उस तप की यंत्रणा और उससे गुज़रने के बाद—

आलोका : उससे गुज़रने के बाद—

माणिक : हाँ, सोचता हूँ शायद तुम्हें, अजीब लगे—इस घंटे आध घंटे के कष्ट ने हमें कुछ क्षणों के लिए अपनी शरीर की उस भूख पर नियंत्रण नहीं दे दिया था जो हम हर अकेलेपन में अपने अन्दर खौलती हुई पाते रहे थे ? और अगर हम उसी तकलीफ़ को दो महीने—दो बरस अपनी यात्रा बना लेते—

आलोका : माणिक—देखो हवा कितनी तेज हो गयी है—चलो शायद आँधी आयेगी—

माणिक : एँ—? हाँ। जरूर—**(तेज हवा। तूफ़ानसूचक संगीत)**

पार्श्व-स्वर : "वीराग्रणी महावीरः महाध्यानी महातपः।
महातेजः जगन्नाथः जितशेष-परीषहः॥

टिप्पणीकार : वर्धमान महावीर ने हर कष्ट को सहज स्वीकारा। मौसम की भयानक मार, उत्पीड़कों की यातना, बुलायी हुई तकलीफ़ें और उनका बारह-बरसों का सिलसिला—तप की भयानक आग से पिघल कर बोध चमकने लगा—वे निराकुल हो गये—केवलज्ञान पा गये—

(बोधोदय सूचक संगीत। पूर्वघटित दृश्य समाप्त)

गुणवन्ती : अरे, आलो—ओह, फ़ोन के पास—क्या किसी के फ़ोन का इन्त-जार है। ओफ् ! आज तो मैं थक गयी थोड़ी देर लेटूँगी—

आलोका : फ़ोन का इन्तजार ? जरूर इन्तजार है। लेकिन वो नहीं—जो श्रीमती पशुपतिनाथ की कोठी में हर सुबह शाम बजता था—वो फ़ोन नहीं—बिल्कुल नहीं—

(फ़ोन की आवाज़)

स्वर : (फ़ोन में) हलो—हलो—हलो—हलो

(फ़ोन रख देती है)

आलोका : (स्वगत) नहीं—नहीं चाहिए यह आवाज़—सुनो—सुनलो—तुमने मुझे ग़लत समझा—सब कुछ ग़लत समझा है—नहीं इस आवाज़ का नहीं, मुझे किसी और आवाज़ का इंतजार है—वह आवाज जो छोटा नहीं करती, बड़ा बनाती है—वह आवाज़ जो बाँधती नहीं मुक्त करती है—वह आवाज़ —

(पूर्वघटित दृश्य। भीड़ का शोर)

स्वर १ : बन्धु एक बात बताऊँ, पता नहीं क्या बात है, भगवान महावीर की वाणी सुनो तो लगता है जैसे अन्दर कुछ बदल रहा है। कितनी भी बेचैनी और व्याकुलता हो एकदम छँट जाती है।

स्वर २ : भाई मैं भी उत्सुक हूँ—मैं भी उसका अनुभव करना चाहता हूँ।

स्वर १ : इन्द्रभूति गौतम को जानते हो ?

स्वर २ : हाँ, नाम तो बहुत सुना है। बहुत बड़े ब्राह्मण विद्वान् हैं—वेदों के पंडित हैं। है न ?

स्वर १ : भगवान की परीक्षा लेने आये थे, परीक्षा खुद दे गये।

स्वर २ : क्या मतलब ?

स्वर १ : अभी पता लग जायेगा। भगवान के सामने आकर न सिर्फ वे, बल्कि उनके दोनों भाई और पन्द्रह सौ शिष्य भगवान को समर्पित हो गये। और अब कहते हैं—विचार तो भगवान के हैं और "शब्द" हैं इन्द्रभूति गौतम के।—और देखो तो कौन आ रहा है ?

(राजसी आगमन सूचक वाद्य)

स्वर २ : ओफ, कितनी भीड़ है अरे ये तो महाराज श्रेणिक हैं और वे रहीं उनकी—रानी चेलना। साथ में राजकुमार-गण भी हैं।

(दृश्य-परिवर्तन। समवसरण)

(समवेत नारे—भगवान महावीर की जय)

इन्द्रभूति : आओ मगधराज श्रेणिक। आज भगवान तुम्हारे प्रश्नों का समाधान करेंगे—नहीं नहीं—बोलो मत। भगवान तुम्हारा प्रश्न जानते हैं। (हल्का संगीत फ़ेड अण्डर)

स्वर १ : (दबी आवाज़) आश्चर्य है।

इन्द्रभूति : तुम्हारा प्रश्न है—धर्म के श्रद्धान को, सम्यक्दर्शन को आचरण में कैसे उतारा जाये—व्रतों के कठिन मार्ग पर कैसे चला जाये ? तो सुनो—जो इन्द्रियों को वश में कर यह बोध पा जाए कि आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, उसे निश्चय ही इन्द्रियों पर विजय मिल जाती है। आत्मा को तपाओ, सुकुमारता छोड़ो, कामना के उस पार आ जाओ, तुम दुःखों से मुक्त होगे। संयम के प्रति निष्ठा पैदा करो, विषयों में अनुरक्ति की वितृष्णा को पहचानो—सुखी होगे।

(फ़्लैश समाप्त)

गुणवन्ती : (गुनगुनाते हुए) "वीर-हिमाचल तें निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है।" अरी आलो—हद हो गयी—तेरा फ़ोन ही नहीं आया अभी तक—

आलोका : (ख़ामोश है)

गुणवन्ती : अरे, क्या हुआ तुझे ? इतनी परेशान है ? धत्तेरे की। तेरा बचपना नहीं गया अभी। माणिक को बुलाऊँ ?

आलोका : (ख़ामोश है)

गुणवन्ती : अरे क्या हो गया है तुझे ? चेहरा एक दम सफ़ेद—तबियत तो ठीक है ?

आलोका : (ख़ामोश है)

गुणवन्ती : सुन। उठ खाना खा ले चल कर, वरना सूरज डूब जायेगा—

आलोका : मुझे माफ़ कर गुणो। मुझे भूख नहीं है। तू खा।

गुणवन्ती : कैसी बात करती है। चल थोड़ा सा खाले—

आलोका : और फिर मेरे लिए खाने के बारे में सूरज डूबने न डूबने से क्या ? प्लीज़, गुणो—

गुणवन्ती : पता नहीं तेरे को क्या हो गया है। चल न, खा। तेरे लिए कॉफ़ी वगैरह कुछ भिजवाऊँ—

आलोका : नो थैंक्यू। तू खा। प्लीज़—

गुणवन्ती : जैसी तेरी मर्जी—"मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है".....

टिप्पणीकार : आलोका को भूख नहीं है, ऐसा नहीं है। माणिक आया था उस वक़्त भी उसने एक घूंट चाय नहीं पी थी। पेट में अजीब जलन हो रही है। यह पहली बार है जब कुछ घंटे इस तरह बिना कुछ खाये पिये गुज़रे हैं। मगर वह इन्हीं कुछ घंटों को एक इतिहास की तरह समेटती जाती है। माणिक की बाइक खराब हो जाने के बाद, एकाध घंटे की यातना के बाद कामना की अकाल मृत्यु वह एक बार फिर महसूस करना चाहती है। गुणवन्ती की बात पर वह हँसना चाहती है लेकिन हँस नहीं पाती क्योंकि विषाद और गहरा हो गया है—फ़ोन—नहीं फोन का नहीं, एक मनःस्थिति का इन्तजार है अब उसको—(फ़ोन की घंटी। बजती है।

आलोका : नहीं—नहीं—(रिसीवर उठाती है)

फ़ोन में स्वर : हलो—हलो—मे आई टाक टू मिसेज पशुपतिनाथ—हलो—हलो—हलो—

(धीरे से रिसीवर रखने की आवाज़)

आलोका : (सहसा चीखकर) नहीं। (स्वगत) नहीं—नहीं—

गुणवन्ती : क्या हुआ ? क्या हुआ आलो ? अरे ये क्या कर रही है तू—बाल क्यों नोच रही है—हाय ! यह मोतियों की माला फैंक दी तोड़ कर।

आलोका : (स्वगत, विक्षिप्त स्वर) नहीं—अब नहीं—छोड़ दे मुझे गुणो—छोड़—

गुणवन्ती : अरी पागल हो गयी है आलो—बाल क्यों उखाड़ती जा रही है—तबियत तो ठीक है ?

आलोका : (स्वगत, विक्षिप्त स्वर) बिल्कुल ठीक है तबियत—बिल्कुल ठीक है—

गुणवन्ती : अरे तुझे यह अचानक क्या हो गया—छोड़ अपने बाल छोड़—ओफ़ ! अरे यह कर क्या रही है—ठहर मैं इन्हें फ़ोन करती हूँ—

आलोका : नहीं। माणिक—नहीं। कोई नहीं—किसी को बुलाने की जरूरत नहीं है।

गुणवन्ती : अरे ठहर न आलो—कहाँ जा रही है—आलो—ओफ पता नहीं क्या हो गया है इसे—फोन करना होगा—

(फ़ोन डायल करने की आवाज़)

गुणवन्ती : हलो—साहब को दीजिए फोन। हाँ, गुणवन्ती हियर—ओह, कहीं चले गये। अच्छा आयें तो कहना फोरन घर आ जायें। बहुत जरूरी काम है। हाँ (फोन रखती है) पता नहीं क्या हो गया है इस लड़की को—पति की मृत्यु से तो इस पर कोई असर नहीं लग रहा था—फिर क्या हुआ—

(प्रवेश)

माणिक : अरे गुणो—कहाँ हो ? प्रवचन में चलना है। महाराजजी के ? कहाँ हो ? क्या हुआ ऐसे चुप क्यों हो ?

गुणवन्ती : वो—आलोका—

माणिक : आलोका ? क्या हुआ उसे ?

गुणवन्ती : पता नहीं क्या हो गया। मुझे तो लगता है कुछ दिमाग़ी गड़बड़ हो गयी है।

माणिक : क्या ? कहाँ है ?

स्वर : णमो अरहंताणं—णमो सिद्धाणं—णमो आयरीयाणं—

आलोका : ओ ! यह है फोन—घंटी बज रही है—मैं वहाँ जाऊँगी—सुनूँगी—हाँ—बात करूँगी—

माणिक : घंटी ?—कहाँ बजी घंटी—

गुणवन्ती : यह तो मन्दिर के घंटों की आवाज़ है—

आलोका : ओ हाँ—वहीं—मन्दिर—हाँ मुनि महाराज के पास प्रवचन में—आने को कह गये थे न वे ?—

पार्श्व से मुनि स्वर : सव्वे जीवा सव्वे सत्ता—(दूसरा स्वर) सब जीवों को—प्राणी मात्र को—

न हंतव्वा न परिघित्तव्वा—(दूसरा स्वर) न मारो—न पराधीन करो।

एस धम्मे सुद्धे निइए सासए—(दूसरा स्वर) यही धर्म, शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है।

न पमायए—(दूसरा स्वर) धर्म-पालन में प्रमाद न करो।

माणिक : हाँ,—हाँ—चलते हैं वहीं आलो, होश में हो ना ?—

आलोका : होश में नहीं—एकदम चेतन—बिल्कुल जगी हुई—गुणो—यह ले, रख दे उठा के—कल खोलना—

गुणवन्ती : क्या ?—यह लिफाफा ? रख दूँ तेरी आलमारी में—ठीक है—तबियत कैसी लग रही है। चलेगी वहाँ या सोयेगी कुछ देर ?

आलोका : **(हँसकर ठहाके से)** सोऊँगी—न न न—अब कभी नहीं—कभी नहीं—**(गाड़ी के आने की आवाज)**—

माणिक : लो गाड़ी लग गयी—चलो महाराज के प्रवचन में—गुणो—तैयार हो न ?

गुणवन्ती : तैयार ही हूँ—महाराज के प्रवचन में जाने की तैयारी ही क्या ? पर ये क्या ? आलो ?—तू तो एकदम सफेद साड़ी पहन आयी—सारी क्रीम पाउडर लिपस्टिक गायब—कितनी अच्छी लग रही है—तू—ओ श्वेत-वसना !—तबीयत ठीक है न ?

माणिक : हो गयी बहुत तारीफ़—पता नहीं वह अच्छी लग रही है या तुम उसकी तारीफ़ करती और भी अच्छी—तुम दोनों सहेलियाँ भी एक पहेली हो— **(नौकर से)** अरे पंचू ?—डाक्टर साहब को फ़ोन कर दे कि अब आने की तक़लीफ़ न उठायें। **(सब एक साथ जाते हैं)**

(पार्श्व से स्वर सुनाई देते हैं)

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।।

टिप्पणीकार : "यत्रास्ति गलितमानं, मानस्तम्भं तदेव वन्दे"

समाप्त

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के

उपलक्ष्य में

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

अन्य विशिष्ट साहित्य

1. **Jaina Art & Architecture (जैन कला एवं स्थापत्य)**

३०० ई० पूर्व से १८००वीं ई० तक के देश के विभिन्न भागों में निर्मित विभिन्न शैलियों के जैन मन्दिरों, मूर्तियों, चित्रांकनों आदि पर उनके इतिहास और क्रमबद्ध विकास का एक प्रामाणिक और सचित्र ग्रन्थ। प्लास्टिक कवर मंडित, सजिल्द। तीन भागों में। पूरे ग्रन्थ में बड़े आकार के ६७२ दुर्लभ चित्र आर्ट पेपर पर, जिनमें लगभग ५० भव्य चित्र बहुरंगी हैं। कुल पृष्ठ संख्या ६३०। सम्पादक हैं—भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के भूतपूर्व महानिदेशक श्री अमलानन्द घोष। देश के मूर्धन्य पुरातत्ववेत्ताओं ने इस ग्रन्थ के लिए क्रमबद्ध लेख लिखे हैं।

अंग्रेजी में प्रकाशित इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी उसी स्तर पर प्रकाशित किया गया है। अंग्रेजी या हिन्दी के तीनों भागों का मूल्य ५५०) रुपये।

'JAIN JOURNAL' ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा है :

It is a massive production that will remain unrivalled for years to come. A work by innumerable scholars and archaeologists, this may be regarded as a standard work on the subject which has been completed with great patience and competence. The work under review gives the impression for the first time as to how vast is the contribution of Jaina mythology in the evolution of Indian art....The choice of illustrations is not only excellent but also exhaustive.

२. **वीरजिणिंदचरिउ (अपभ्रंश-हिन्दी)**—कवि पुष्पदंत तथा श्रीचन्द्र कृत भगवान महावीर का जीवन चरित्र। डॉ० हीरालाल जैन द्वारा संपादन, हिन्दी अनुवाद एवं महत्वपूर्ण विस्तृत प्रस्तावना तथा डॉ० ए०एन० उपाध्ये की विशिष्ट अंग्रेजी भूमिका। मूल्य १०) रुपये।

३. **वीर वर्धमानचरित** (संस्कृत-हिन्दी)—पन्द्रहवीं शती की रोचक, सुन्दर संस्कृत काव्य-कृति। हिन्दी अनुवाद और विशद प्रस्तावना सहित। मूलकर्ता—भट्टारक सकलकीर्ति। सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल जैन शास्त्री, ब्यावर। मूल्य १६) रुपये।

४. **वड्ढमाणचरिउ** (अपभ्रंश-हिन्दी)—बारहवीं शताब्दी का अपभ्रंश काव्य-ग्रन्थ। मूलकर्ता—कवि विबुध श्रीधर, सम्पादन—अनुवाद : डॉ० राजाराम जैन, मूल्य २७) रुपये।

५. **वर्धमानचरितम्** (कन्नड)—कन्नड का काव्य-ग्रन्थ। मूल—कवि पद्म, कन्नड साहित्य के प्रसिद्ध कवियों में प्रमुख। सम्पादक—प्रो० बी०एस० सन्नैया, मूल्य ७) रुपये।

६. **वर्धमानपुराणम्** (कन्नड)—महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ। मूल कवि—आचण्ण। सम्पादक—प्रो० टी० एस० शामराव। मूल्य ४५) रुपये।

७. **श्रीरामचन्द्रचरितपुराणम्** (कन्नड)—मूल-महाकवि पम्प। सम्पादक—प्रो० आर०सी० हिरेमठ। मूल्य ४०) रुपये।

८. **महावीर : युग और जीवन दर्शन**—भगवान महावीर के जीवन दर्शन और उनके युग के प्रामाणिक तथ्यों को प्रस्तुत करने वाली एक सर्वाधिक महत्व-पूर्ण लघुकृति। कृतिकार—डॉ० हीरालाल जैन तथा डॉ० आ० ने० उपाध्ये। मूल्य २-५० रुपये।

९. **Mahavira : His Times and His Philosophy of Life**—

उपर्युक्त पुस्तिका 'महावीर : युग और जीवन दर्शन' का अंग्रेजी रूपान्तर। मूल्य ३) रुपये।

१०. **Pancastikaya-Sara :**

प्रो० ए० चक्रवर्ती का संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण। साथ में अमृतचन्द्राचार्य विरचित तत्वप्रदीपिका टीका, अंग्रेजी के जानकर विद्वानों को भेंट योग्य। सम्पादक—डॉ० ए०एन० उपाध्ये,। मूल्य ३०) रुपये।

११. **Jaina Literature in Tamil :**

प्राचीन जैन तमिल साहित्य के विकास एवं स्मृति में जैन आचार्यों के अनुपम योगदान को प्रदर्शित करने वाले ग्रन्थ का परिवर्धित नवीन संस्करण। मूल लेखक :- प्रो० ए० चक्रवर्ती, सम्पादक—डॉ० के०वी० रमेश। मूल्य २०) रुपये।

158

१२. **Religion and Culture of the Jains :**

जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और कला का संक्षिप्त परिचय, सचित्र, सार्वजनिक उपयोग के लिए अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तक। लेखक—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन। मूल्य १८) रुपये।

१३. **Cosmology Old and New :**

उमास्वामी कृत 'तत्वार्थसूत्र' के पांचवें अध्याय (जिसमें जीव और जगत् का विवेचन है,) की आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में विस्तृत समीक्षा। लेखक—प्रो० जी० आर० जैन, नवीन संस्करण, नयी दुर्लभ सामग्री। मूल्य १८) रुपये।

१४. **भारतीय सृष्टिविद्या**—सृष्टि विद्या के सम्बन्ध में भारतवर्ष के तीन प्रमुख जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्मों के विचारों, धारणाओं एवं कल्पनाओं का विकासवाद के सन्दर्भ में शोधपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन। लेखक—डॉ० प्रकाशचन्द जैन, मूल्य २०) रुपये।

१५. **देवगढ़ की जैनकला**—भारतीय कला एवं पुरातत्व के प्रमुख केन्द्र देवगढ़ का सांस्कृतिक अध्ययन उसके इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य और शिल्पकला के परिप्रेक्ष्य में। १२२ मनोरम चित्रों के साथ। लेखक—डॉ० भागचन्द्र जैन, मूल्य ३५) रुपये।

१६. **वीर शासन के प्रभावक आचार्य**—जीवन झाँकियां उन आचार्यों, मनीषियों आदि की जिन्होंने जैन साहित्य के विभिन्न अंगों की श्री-वृद्धि तो की ही, अपने निर्मल जीवन एवं चारित्रिक गुणों द्वारा जन-जन को प्रभावित भी किया। अत्यन्त उपयोगी। लेखक—विद्याधर जोहरापुरकर तथा कस्तूरचन्द कासलीवाल, मूल्य १२) रुपये।

१७. **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ**—गत २५००वर्षों में हुए जैन-सम्राट्, राजा-महाराजा, सामन्त-सरदार, मन्त्री और राजपुरुष, सेनानी और योद्धा, सेठ-साहूकार, उद्योगपति आदि जैसे लौकिक क्षेत्र के कतिपय कर्मवीर पुरुषों और महिलाओं का कालक्रम से परिचय। लेखक—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन। मूल्य २०) रुपये।

१८. **जिनवाणी**—स्व० डॉ० हीरालाल जी द्वारा संकलित एवं सम्पादित सूक्ति-संग्रह, हिन्दी अनुवाद सहित। प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न ग्रन्थों से चुनी हुई *गाथाओं का संकलन है। इनमें जैनधर्म की मौलिक उद्भावनाओं का, दर्शन, ज्ञान,* और चारित्र के अन्तर्गत आने वाले सिद्धान्तों का लगभग ४० विषयों के अन्तर्गत प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं, किन्तु यह नितान्त निराला है। मूल्य १२) रुपये।

१९. **महाकवि हरिचन्द्र : एक अनुशीलन**—संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महाकवि कालिदास, भारवि और माघ के समकक्ष, कहीं-कहीं उनसे भी विशेष, एक महाकवि जिसके कृतित्व को देश विदेश के विद्वानों ने मान दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकवि के व्यक्तित्व तथा उनकी दोनों कृतियों—'धर्मशर्माभ्युदय' और 'जीवन्धरचम्पू' का तुलनात्मक अध्ययन है। लेखक—पं० (डॉ०) पन्नालाल साहित्याचार्य। मूल्य १४) रुपये।

२०. **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ** (पाँच भागों में)—भारतीय ज्ञानपीठ के संयोजन, संपादन एवं निर्देशन के अन्तर्गत यह ग्रन्थ भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई की ओर से पाँच भागों में प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थ के दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। समस्त तीर्थक्षेत्रों का परिचय उनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पुरातात्विक पृष्ठभूमि में दिया गया है।

प्रथम भाग में उत्तरप्रदेश, दिल्ली, पोदनपुर और तक्षशिला के तीर्थों का परिचय, ८४ भव्य चित्रों और मार्ग दर्शाने वाले अनेक मानचित्रों सहित—
मूल्य ३०) रुपये

द्वितीय भाग में बिहार, बंगाल, उड़ीसा के तीर्थों का परिचय ७९ भव्यचित्रों और मार्ग दर्शाने वाले अनेक मानचित्रों सहित। मूल्य ३०) रुपये

तृतीय भाग में मध्यप्रदेश के दिगम्बर जैन तीर्थों का परिचय।

चतुर्थ भाग में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र के दिगम्बर जैन तीर्थों का परिचय।

पंचम भाग में दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन तीर्थों व कलातीर्थों का परिचय।

(पाँचों भागों का मूल्य : १५०) रुपये।) (अन्तिम तीनों भाग शीघ्र प्रकाश्य)

•••

भारतीय ज्ञानपीठ
बी-४५।४७ कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-१